सहज आनंद

शुभारम्भ

स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद के पैंतीस वर्षों में जहाँ हमने बहुत कुछ पाया है वहाँ बहुत कुछ खोया भी है। इस अवधि में हमारी उपलब्धियाँ मुख्यत: भौतिक क्षेत्र में रही है—हरित क्रांति, नए-नए उद्योगों की स्थापना, वैज्ञानिक प्रगति, साहसिक अभियान आदि। परमाणु विज्ञान और उपग्रह के क्षेत्र में भारत विश्व के इने गिने छ: देशों में है। औद्योगिक विकास में वह तीसरे विश्व का सिरमौर होने का दावा कर सकता है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में हमारी प्रधानमंत्री की सफलताएँ किसी भी देश के लिये गर्व का कारण हो सकती है।

लेकिन दूसरी ओर आध्यात्मिक धरातल पर हम न केवल विकास नहीं कर पाए, वरन् उल्टी दिशा में अग्रसर होते दिखाई दे रहे हैं। नैतिक मूल्यों में निरंतर गिरावट पर चतुर्दिक चिंता अकारण नहीं है। शिक्षा, धर्म, राजनीति, व्यवसाय, अर्थनीति, प्रशासन-तंत्र शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र बचा हो जहाँ मूल्यों का संकट न हो। धर्म के नाम पर हो रही हिंसा, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार आदि दानवों का बढ़ता हुआ विकराल रूप आदि इसी नैतिक संकट के बाहरी लक्षण हैं।

साहित्य भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। कहना न होगा कि आज हिन्दी में ऐसे साहित्य का भारी अभाव है जिसे पढ़कर हमारी आत्मा तृप्त हो, हमारे ज्ञान में वृद्धि हो और हम अपने पूर्वजों के दिखाए सन्मार्ग पर आगे बढ़ सके। इसके लिये क्या हमारे साहित्यकार अपने को दायित्व मुक्त और दोषमुक्त समझ सकते है?

'सहज-आनन्द' के माध्यम से हमारा प्रयास इस अभाव को पूरा करने और नैतिक पुनर्जागरण में यथा शक्ति अपना अंशदान करना होगा। हम जानते हैं कि संकट अति विशाल तथा व्यापक है और हमारी शक्ति अत्यंत सीमित। ऐसे में हमारा यह प्रयास ऊँट के मुंह में जीरा ही समझा जाएगा। फिर भी हम इस संकल्प के साथ अपने इस प्रयास का शुभारम्भ कर रहे हैं कि हर बड़े काम का प्रारम्भ छोटे रूप से ही होता है।

अशोक जैन
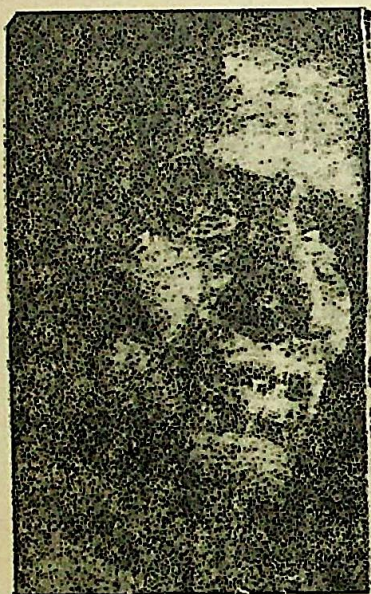
सहजानन्द वर्णी

'सहजानन्द वर्णी' श्रमण सन्त परम्परा के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे। उनकी अगाध विद्वत्ता तथा असाधारण धारणा-शक्ति के मूर्तरूप है उनके द्वारा रचित पाँच सौ ग्रंथ। अष्ट सहस्त्री, प्रमेय कमल मार्तण्ड, आप्त परीक्षा, सप्तभंगी तरंगिणी आदि गहन दार्शनिक ग्रन्थों पर उनके विस्तृत प्रवचन आज जैन न्याय शास्त्र की निधि बन गये हैं।

समयसार व प्रवचनसार पर उनकी सप्तदशांगी टीका उनके गहन चिन्तन तथा अध्यवसाय को व्यक्त करती है। पूज्य वर्णी जी ने अपनी विराट् साहित्यिक साधना के माध्यम से जो विरासत समर्पित की है वह केवल जैन साहित्य के लिये ही गौरवास्पद नहीं अपितु संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के विपुल रत्न भंडार में प्रतिनिधि रत्नों के रूप में प्रतिष्ठित है। भारतीय दर्शन व अध्यात्म के प्रेमी समाज को उनका योगदान अद्वितीय है।

उनकी पावन स्मृति ही

सहज-आनन्द (मासिक)

के नामकरण का आधार रही है।

उनको शतशः नमन।

गोविन्द शास्त्री

जन्म से ही नहीं, कर्म और विचारों से भी शास्त्री जी ब्राह्मण के शर्मण्य स्वभाव के प्रतीक हैं। विज्ञापन से अरुचि रखने वाले तथा सम्मान-प्रदर्शन से डरने वाले शास्त्री जी व्यक्तिगत और रचनाधर्मी स्तर पर देश के विज्ञापित ज्योतिषियों एवं तांत्रिकों से भिन्न, अपनी स्वतंत्र पहचान बनाये हुए हैं। इसलिये समाचार पत्रों या अन्य प्रचार माध्यमों पर इनका कोई वक्तव्य या विज्ञप्ति देखने-सुनने में नहीं आती। ठोस काम ही इनकी पहचान है। इनके कृपाश्रय से अनेकों पीड़ित जनों को सन्ताप से मुक्ति मिली है। किन्तु सत्ता या अर्थ का बल या प्रलोभन इनके पास नहीं फटक पाया। भारत के प्राक्तन विज्ञान को विश्वास व प्रयोग का विषय बनाने के लिये कृत-संकल्प शास्त्री जी तंत्र के निगूढ़ रहस्यों के ज्ञाता और गहन अनुसंधाता होकर भी उसके सर्वजन सुखाय उपभोग के पक्षधर हैं। साथ ही आधुनिक युग की सारी समस्याओं को जानने-समझने तथा परम्परागत और साम्प्रतिक विचार धाराओं के बीच सामंजस्य खोजने में सक्रिय हैं।

सहज-आनन्द

श्रद्धेय शास्त्री जी की प्रेरणा का ही सुफल है।
उन्हीं को सादर समर्पित···प्रवेशांक

लेखकों और पाठकों से.........

आप धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, साहित्यिक किसी दिशा में अवश्य विचारते रहे होंगें। आपके चिन्तन का कोई निष्कर्ष भी निकला होगा अथवा कोई ऐसा प्रसंग आपके जीवन में अवश्य आया होगा जो चमत्कारी रहा है, प्रेरणाप्रद रहा है या उसकी चुभन आपको आज भी बेचैन कर रही है, ऐसे अनुभव हमें अवश्य प्रेषित करें।

ज्वलंत सामयिक सन्दर्भों पर हम अपने प्रबुद्ध पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की **'पाठक विचार मंच'** हेतु उपेक्षा रखते हैं।

उभरती युवा मेधा व उत्साही युवाओं का सृजनात्मक आकार होना चाहता है...सहज आनन्द। यदि आप खेल जगत, फिल्म, रंगमंच, शास्त्रीय नृत्य व संगीत, फोटोग्राफी, पैंटिंग, शिल्प कला, उद्योग, समाज-सेवा आदि से सम्बद्ध किसी भी विधा के प्रतिभावान युवा है तो हमें आप अपना संक्षिप्त परिचय अपनी उपलब्धियों सहित नवीनतम फोटोग्राफ के साथ **'इनसे मिलिए'** स्तम्भ हेतु अवश्य भिजवायें।

नई पीढ़ी के युवा हस्ताक्षरों का हार्दिक स्वागत है। प्रतिमाह एक हस्ताक्षर की उसकी विशिष्ट रचनाओं व आत्मकथ्य के साथ-परिचय अपने पाठकों से **'नवागत'** के अन्तर्गत करायेंगे। इस कालम हेतु ऊर्जावान काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ, लघु कहानियाँ,व्यंग्य-फीचर आदि भिजवाई जा सकती है।

साथ ही आप अपने नगर/गाँव की सांस्कृतिक/साहित्यिक गतिविधियों की रिपोर्ट भिजवा सकते हैं। आपके नगर/गाँव के आस-पास कोई ऐतिहासिक महत्त्व का स्मारक हो या कोई सिद्ध पीठ हो तो उसका विवरण भेज सकते हैं।

सहज आनन्द अपने उद्देश्यों को साकार रूप दे सकें। दैनिक जीवन की सभी समस्याओं में सफल मार्गदर्शन प्रस्तुत कर सकें। इस हेतु पाठकों के सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। पाठकों के सुझाव हमारे लिये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इससे भविष्य में हम आपकी अधिक सेवा कर सकेंगे।

—संपादक

इस अंक में……

पारिवारिक मासिक

सहज आनन्द

प्रवेशांक फरवरी १९८४

सम्पादक एवं प्रकाशक :
अशोक जैन

० 'सहज आनन्द' प्रत्येक मास की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

० सदस्यता शुल्क, 'सहज-आनन्द' के नाम देय मनीआर्डर या बैंक-ड्राफ्ट द्वारा ही भिजवाये। वी० पी० पी० भेजने में हम असमर्थ रहेंगे।

एक प्रति	रु० २.५०
वार्षिक	रु० २५.००

कार्यालय :
९४४, नईबस्ती, कूंचा पातीराम,
बाजार सीताराम, दिल्ली-६

मंगल कामनाएँ

'सहज आनन्द' मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रही है, जान-
कर प्रसन्नता तो हुई पर काम बड़े जोखम का है। पत्र-पत्रिकाओं के प्रका-
शन-संचालन का काम अब खासा बड़ा उद्योग बन गया है। फिर भी ऐसे
पत्रों की आवश्यकता तो है और रहेगी जिनका लक्ष्य व्यवसाय नहीं, कुछ
उससे ऊँचा सांस्कृतिक और नैतिक है। आपका उत्साह और साहस प्रशं-
सनीय है और मेरी कामना है कि इसमें सफलता और यश प्राप्त हो।

● जैनेन्द्र कुमार

आज जब जीवन वैज्ञानिक चकाचौंध तथा भौतिक साधनों की
उपलब्धियों की होड़ में व्यस्त है तब धर्म, संस्कृति, चरित्र निर्माण, साधना
और संयम की बात करना अप्रासांगिक सा लगता है। आज हमारा समाज
जिस वातावरण से गुजर रहा है उसमें सहज आनन्द जैसे पत्र ही उसे एक
नई दिशा देने का कार्य कर सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने
उद्देश्य में पूर्णतः सफल होंगे। मैं आपके इस सत्प्रयास की सफलता की
कामना करता हूँ।

● क्षेमचन्द 'सुमन'

सहज आनन्द बड़ा दुर्लभ होता है। आप इसे प्रकाशित कर रहे हैं।
यह स्वयं में सहजानन्द है। मुझे यह नाम बहुत भाया। आप अपने प्रति-
पाद्य में सफल हों।

● शीला झुनझुनवाला
सम्पादक, साप्ताहिक हिन्दुस्तान

'सहज आनन्द' के प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनाएँ। आनन्द है
कहाँ ? निरंतर विकसित स्थितियों में मनुष्य यदि कुछ खो रहा है तो वह
उसकी पहचान। आनन्द अनुभूति की वस्तु है, आपका पत्र पाठकों को
आनन्द की मात्र क्षणिक अनुभूति ही करा सके तो मैं समझूंगा आपका
प्रयास सफल रहा है।

● राजेन्द्र अवस्थी
सम्पादक, कादम्बिनी

वड़ी खुशी हुई यह जानकर 'सहज आनन्द' पत्रिका का विमोचन श्रद्धेय श्री जैनेन्द्र कुमार जी के कर कमलों द्वारा हो रहा है। इस अवसर पर श्री क्षेमचन्द्र सुमन का सम्मान भी कर रहे हैं। मैं अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेज रहा हूँ। आपका समारोह खूब सफल हो। सुमनजी को बहुत-बहुत वधाई दें।

● विष्णु प्रभाकर

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'सहज आनन्द' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन होने जा रहा है। मुझे आशा और विश्वास है कि 'सहज आनन्द' का हर अंक ऐसी सामग्री प्रस्तुत करेगा जो समाज को मनन, चिन्तन तथा आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करेगा। मेरी शुभकामनायें स्वीकार कीजिए।

● अक्षय कुमार जैन

आज के जीवन में बहुत कुछ है किन्तु ज्यादातर दिखावटी और कृत्रिम समृद्धि है, पर सुख नहीं है। इसका मूल कारण तो यही है कि जीवन से सहजता गायव हो गई।

पत्थर, सीमेंट और इस्पात की दीवारों में कैद लोगों को आपकी पत्रिका 'सहज आनन्द' कुछ राहत अवश्य देगी और शायद उन्हें वह सब भी दे सके जिसकी उन्हें सर्वाधिक आवश्यकता है।

● जयप्रकाश भारती
सम्पादक, नन्दन

हर्ष का विषय है 'सहज आनन्द' मासिक पत्र का प्रकाशन एक महान उद्देश्य को लेकर होने जा रहा है। आज के भौतिक युग में सहज आनन्द पाठकों में नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में समर्थ होगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। मैं हृदय से इस पत्र के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

● बरसाने लाल चतुर्वेदी

'दिवंगत हिन्दी सेवी' के रूप में श्री क्षेम चन्द्र जी 'सुमन' ने जिस महान कार्य का श्री गणेश किया है और वीड़ा उठाया है वह अपने में अद्वितीय है। हम कह सकते हैं कि 'सुमन जी' व्यक्ति नहीं एक संस्था है। 'पद्मश्री' जैसे विशिष्ट अलंकार से सम्मानित होने पर सहज-आनन्द परिवार उन्हें हार्दिक बधाई देता है। तथा अलंकार के योग्य व्यक्ति के चुनाव पर भारत सरकार को भी बधाई देना चाहता है।
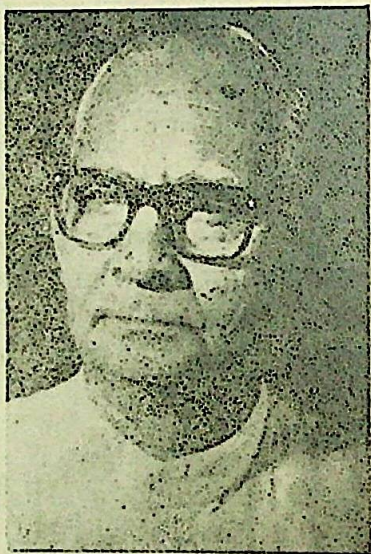
सहज आनन्द कृत संकल्प है :

- अश्लील, अनैतिक एवं समाज को दूषित करने वाली फिल्मों को नकारने के लिये।
- स्वस्थ, पारम्परिक मूल्यों एवं ज्वलन्त समस्याओं को स्थायित्व प्रदान करने वाली फिल्मों को प्रोत्साहन देने के लिये।
- फिल्म जगत को एक नवीन स्वस्थ चिन्तन एवं गति देने के लिये।
- सिने दर्शकों की रुचि परिष्कृत करने के लिये...

अपने उद्देश्यों को साकार रूप देने हेतु
सहज आनन्द की एक गौरवशाली एवं संग्रहणीय भेंट
लीक से हटकर एक नये रूप में

फिल्म-विशेषांक

जो आपको अपने से ही जोड़ने की कड़ी सिद्ध होगी।
बड़े आकार के २०० पृष्ठों में शीघ्र प्रकाश्य
मूल्य : मात्र चार रुपये
[ऐजेन्ट बन्धु, अपनी प्रतियां अभी से सुरक्षित करा लें]

एक विचारणीय सुझाव

● गोविन्द शास्त्री

श्री अशोक जैन ने 'सहज आनन्द' प्रकाशित करने से पहले एक विज्ञप्ति प्रसारित कर इसे 'विचार यज्ञ' कहा था। इसमें कोई संशय नहीं कि यह विचार यज्ञ सामयिक आवश्यकता है, इससे होने वाले रुचि परिष्कार, चिन्तन पद्धति का विकास और सात्विक अनुभूति के सुवास का आनन्द आज भले दिखाई न दे पर यह ज्ञानवर्धन के साथ-साथ हमारे गौरवमय प्राक्तन से हमें परिचित करायेगा, जोड़ेगा और हमें दैन्यमुक्त करके उन्नतशिर होना सिखायेगा। मेरे प्रति स्नेह रखने वाले जनों का स्नेहातिशय ही मुझे इस विचार यज्ञ का पुरोधा बना बैठा और अशोक जी यजमान बन बैठे जबकि यथार्थ में यह उन हितैषियों की प्रबल कामना ही है जिसे मैं या वे वहन कर रहे हैं। यह मेरी समझ में या मेरी कल्पना में राजसूय यज्ञ है, इसे ऐसा सशक्त माध्यम बनाने का स्वप्न है कि सारे सरल हृदय, आस्थावान् सुजन परस्पर परिचित हों, स्नेह सम्बन्धों से जुड़े रहें और देश, धर्म या वाद की दुराग्रहणपूर्ण विभाजकता से ऊपर उठकर मानव के उदात्त रूप को पहचानें, श्रेष्ठ मनुष्य बनें।

हमारे शास्त्र खुले हैं, हमारा ज्ञान अनावृत है, माँ सरस्वती की रूप श्री के दर्शन सबके लिये सुलभ हैं और यह भी सच है कि लोक व्यवहार और जागतिक सुख-दुःखों, सम्पन्नता-विपन्नता का रहस्य भी सरस्वती के रूप विस्तार में ही आता है इसलिये ज्ञानवान् के लिये लोक और परलोक सुपरिचित होते हैं, वह प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता को पहचानता है इसलिये उसमें प्रभुता प्रकट होती है। यह सारा उन्मुक्त ज्ञान भी व्यक्ति में स्वतः प्रकट नहीं होता, गुरु कृपा से उसके अज्ञानान्ध चक्षु खुलते हैं तो वह रहस्य सुलझाने लगता है और पराम्बा का सीधा अनुग्रह होता है तो वह शास्त्र का प्रवक्ता हो जाता है, ज्ञान नैसर्गिक मन्दाकिनी की भाँति अनवरुद्ध-अस्रज प्रवाहित होने लगता है।

इस देहनाम के साथ अनेक लोगों के प्रत्यक्ष व परोक्ष सौहार्द सम्बन्ध

जुड़ गये है और उन सम्बन्धों को विश्वसनीय बनाये रखने के लिए मैंने आज तक सावधान प्रयत्न किया है। आर्थिक तंगी के बावजूद किसी व्यक्ति से कोई अपेक्षा रखना मेरी प्रकृति में नहीं रहा। किसी प्रकार की संस्था केन्द्र या परिषद् जैसा आडम्बर कभी कल्पना में भी नहीं आया जीवन को सुख संभार एवं सुविधाओं के विस्तार के गिरवी रखने का विचार कभी नहीं आया, जो है वही सुखकर है, जो नहीं है, उसे पाने के लिये जीवन को अशान्त करना समझदारी नहीं लगती। यही दृष्टि मेरे लेखन का प्रयोजन रही है आज इसे स्पष्ट रूप में लिखकर आत्म प्रशंसा नहीं कर रहा बल्कि यह कोशिश कर रहा हूँ कि यह जीवन दर्शन आपके भी कुछ काम आ सके तो आपके जीवन की आधे से अधिक विसंगतियाँ दूर हो जायेंगी। मेरे इस जीवन दर्शन में या इसके परिणाम स्वरूप एक प्रकार का अहंकार प्रकट होने लगा है, अहंकार बुरी चीज है पर यह उस राहु की अपेक्षा कम घातक है जो अपने स्वार्थ के लिये जो चाहे छल कर सकता है, यह उस लोभ पिशाच की तुलना में अच्छा है जो परस्व हरण के लिये अनेक प्रकार के आडम्बर रचता है। दूसरी बात यह भी है कि यह अहम् ही मेरे अस्तित्व को सीधा खड़े कर सकता है, यही ब्राह्मण की पहचान है, यही मेरी स्वतंत्रता है। मेरी इच्छा हो तो अदने-से अदने व्यक्ति के साथ घुल-घुल कर बात कर सकता हूँ और मन न हो तो अच्छे सत्ताधीशों और धनाढ्यों को भी सीधा-सपाट 'ना' कह देता हूँ। अष्टावक्री महाराज मेरी रगों में कहीं है, दुर्वासा का ब्राह्मवर्चस् मेरी पीढी में रहा है इसलिये यह अहम् मेरी शिनाख्त है, ब्राह्मण की रीढ है। जो मुझे रुचिकर नहीं है उसे सहने वाला लुब्धक मेरे में नहीं रह सकता, अपने लोभ के लिये मायाचार करने वाला पिशाच इस अहंकार के आगे टिक नहीं सकता। तीसरी वास्तविकता यह है कि यह जीवन परामबा के श्रीचरणों में समर्पित है वह जो कुछ दे रही है, पर्याप्त है । वह सर्वेश्वरी मेरे से अधिक मेरा खयाल रखती है फिर मैं क्यों अपनी ढपली बजाऊँ ? उसके स्नेहिल छाया प्रसार में जो कुछ है; सम्पूर्ण है, आनन्दप्रद है। प्रेयसी से मिलने की आतुरता और मिलने पर प्राप्त होनेवाली तृप्ति तपती लूओं और गर्मी से झुलसते संकरे से टीन के मकान को शीतल-सुखागार बना देती है इसलिए मेरी

'माँ' के कृपाश्रय में जो आनन्द है वह किसी बाहरी उपकरण में नहीं है। व्यक्तिगत रूप से मैं भौतिक उपकरणों से डरता हूँ क्योंकि यदि कोई भौतिक पदार्थ मेरे मन में घुस गया तो वह जब तक मुझे प्राप्त नहीं होगा मेरी तटस्थता टूटती रहेगी, ऐसे लगता रहेगा जैसे उसके और मेरे प्रेम-भरे आलिंगन में गले का हार चुभ रहा है। यह नहीं है कि मेरे पास भौतिक साधन नहीं है, हैं, बहुत हैं पर उन साधनों का उपयोग मेरे हितैषी मित्र, मेरे पुत्र व पुत्रियाँ करते हैं तो मैं अधिक सुखी होता हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ, दैन्य और निराशा मेरे घर में नहीं आ सकती इसलिये उन अबोध बालकों और युवावस्था के उद्दाम प्रवाह से परिचित हो रहे युवा पुत्रों को किसी प्रकार से कुण्ठित नहीं होने देना चाहता। जो उनके लिये हितकर है, वह उनको मिलती ही है। अपने समवया मित्रों में वे हीन न रहें, इस पर मेरे भीतर बैठे पिता की समर्थ और सतर्क दृष्टि लगी रहती है और यही दृष्टि उन सब पर भी रहती है जो दूर-दराज स्थानों में हैं, जिनके साथ इस जन्म का नहीं विगत जन्मों का सम्बन्ध रहा है।

इस आत्मश्लाघा की सोदाहरण प्रस्तुति मैं केवल एक शब्द 'स्वाभिमान' से भी कर सकता था किन्तु उससे न मुझे सन्तुष्टि होती न आप ही चमत्कृत होते। अब मैं मूल विषय पर आता हूँ—

प्रातःस्मरणीय लाहिड़ी महाशय के जीवन चरित्र में एक जगह लिखा है।—उनके गुरु आदेश दे रहे हैं—'श्यामा चरण ! तुमने इस संसार में सुख भोगा है और इस सुख के साधन समाज ने दिये हैं इसलिये जितना सुख भोगा है, उससे दस गुना परोपकार अवश्य करना।'

उसी आत्मकथा में एक घटना है—कतिपय जनों के अश्रद्धापूर्ण वाक्यों से उत्तेजित होकर लाहिड़ी महाशय एकान्त कमरे में अपने गुरु का आवाहन करते हैं। वचनबद्ध एवं कृपाप्रवण गुरु सदेह वहाँ प्रकट हो जाते हैं किन्तु फिर वे लाहिड़ी महाशय को डाँटते हैं और कठोर शब्दों में कहते हैं कि ऐसे मूर्ख जनों के कहने में आकर उसने ऐसा क्यों किया ?

ये दोनों दृश्य मैंने साभिप्राय लिखे हैं। इस समाज ने मेरा बहुत ख्याल रखा है, कितना कुछ दिया है, उसके प्रतिकार में मैं दस गुना उपकार नहीं कर सकता फिर भी यदि इस पत्र के माध्यम से श्रद्धावान् जनों

का एक नया परिकर बन सका तो दस गुणित ही नहीं सौ गुना काम सर्व-जन सुखाय; बहुजन हिताय किया जा सकता है। पर उसके लिये पात्रता एक शर्त है। कारण कि मैं केवल संकेत और परामर्श ही दे सकूँगा। दूसरे जो लोग पहली सफलता पर इतराने लगते हैं या पहली विफलता को आखिरी विफलता समझ कर निराश हो मैदान छोड़ जाते हैं अथवा दो-चार प्रयोग सीख समझ कर पसारी बनने का वहम पाल लेते हैं उनसे मेरी पटरी नहीं बैठती क्योंकि उनके माध्यम से मैं विषय की प्रतिष्ठा करना चाहता हूँ, भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लाभ समाज को देना चाहता हूँ और उनका ऐसा व्यवहार मुझे मेरे उद्देश्य से भटकता-सा लगता है। ये परामर्श लेकर वे तान्त्रिक शिरोमणि या प्रख्यात लेखक बन जायँ, इसमें मेरी दुकान तो उठेगी नहीं, न मेरे ग्राहक ही टूटेंगे (क्योंकि मेरे पास दुकान है ही नहीं) किन्तु उनको जो मुझे कराना था वह नहीं हो पायेगा। ऐसी स्थिति मुझे पसन्द नहीं कि एक सीखतड लड़का कटिंग सीख कर अपनी अलग दुकान लगा बैठा क्योंकि मेरी दृष्टि में उस विषय का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद तो मैं स्वयं कह दूंगा कि जाओ, 'अपना स्वतंत्र काम करो।'

इस समय भी कुछ चुने हुए और विश्वासी जन मेरे निकट सम्पर्क में हैं, वे काम कर रहे हैं पर वे मेरे अपने हो चुके। इसके साथ ही वे पर्याप्त नहीं हैं—यह भी महसूस होता है, इतने बड़े देश की इतनी जनसंख्या की अपरिमेय विषमताओं में सहयोग करने के लिये तो विशालवाहिनी चाहिए। यह भी न हो सके तो बड़े शहरों अथवा क्षेत्रीय स्तर पर इस तरह के व्यक्ति सुलभ हों जो लाभ-लोभ का विचार किये बिना केवल परमात्मा का विश्वास लेकर इस विद्या का लाभ पीड़ित-दीन जनों को दे सकें। ऐसा नहीं है कि वे घर फूंक तमाशा देखें पर दुकान भी न लगायें। कहने की आवश्कता नहीं कि तन्त्र, ज्योतिष और आयुर्वेद हमारे दुःखों की सूचना ही नहीं देता, उनसे त्राण का मार्ग भी बताता है।

मेरा दो तरह का इस्तेमाल किया जा सकता है। पहला यह है कि विभिन्न व्यक्तिगत समस्यायें रखी जायँ, उनका समाधान पूछा जाय दूसरा यह है कि जो मैं जानता हूँ, वह मुझसे छीन लिया जाय। छीनना इसलिये

कह रहा हूँ कि अपने रहस्य को कोई भी सरल सहज भाव से प्रकाशित नहीं करता किन्तु योग्य व्यक्ति ऐसी कठोर परतों को भी तोड़ कर ले लेते हैं। हमारी पुत्रियों के हम किसी न किसी जन्म के कर्जदार होते हैं और देखिये, कितने कृतज्ञ भाव से हम उनका कर्ज चुकाते चले जाते हैं। इस सारे सम्भावित प्रकरण में दो बातों का ध्यान अवश्य रखा जाय, पहली यह कि स्वार्थ और अहम् भाव चाहे कितने ही छुपे रहें मेरी निगाह से ओझल नहीं हो सकेंगे। जब मैं किसी भी प्रकार का स्वार्थ साधन करना नहीं चाहता तो आपका यह लोभी वणिक् मेरे यहाँ कैसे टिक पायेगा। दूसरी बात यह कि वशीकरण वैताल या पिशाच साधना जैसे ' निकृष्ट प्रयोगों की लालसा लेकर किसी प्रकार का सम्बन्ध न जोड़ा जाय।

एक मेरा अपना स्वप्न है कि एक ऐसा चिकित्सा केन्द्र बने जो भौतिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति दे सके। उसमें ऐसी व्यवस्था हो कि ज्योतिष, तन्त्र और आयुर्वेद का समन्वित उपयोग किया जाय। जैसे-एक नौ फ्लैटों का मकान हो, उसका प्रत्येक फ्लेट् ग्रहों के प्रतिकारी वातावरण से युक्त हो, जैसे-बुध के कारण कोई व्यक्ति असन्तुलित हो रहा है तो उसे बुध के फ्लेट् में रख दिया जाय। उस फ्लेट की प्रत्येक चीज हरे रंग की रहे, उस व्यक्ति के भोजन में भी बुध दोष का निवारण करने वाली वस्तुयें हों, हवन आदि भी तदनुसार हो।

ऐसे ही तंत्र के सुगुप्त प्रयोगों के परीक्षण करने की व्यवस्था हो और यह केन्द्र बिना व्यावसायिक दृष्टि के नाम-मात्र के खर्च पर लोगों को परामर्श दे सके, मार्ग दर्शन कर सके किन्तु इसके किसी भी कोने पर गोविन्द शास्त्री का नाम न छपे। हाँ, इसे अव्यावसायिक एवं विश्वसनीय घोषित करने के लिये यदि इस देह नाम का उपयोग करना अनिवार्य लगे व हितकर हो तो क्या आपत्ति है?

अनेक बार ऐसे केन्द्र, परिषद वा संस्था खोलने वाले लोगों का आग्रह होता है कि उसके लैटर हैड में मेरा नाम छाप दिया जाय। मैंने उनको सविनय अस्वीकार कर दिया है। फिर भी यदि किसी ने स्नेह एवं विश्वास के आधार पर मेरा नाम छाप लिया हो तो उसमें मेरा दोष और दायित्व नहीं है। निश्छल और सुहृदय जनों से मैं दूर नहीं हूँ। □

भगवान श्रीराम

● प्रेम दीक्षित

राम के पहले का इतिहास भी है, सृष्टि और मनुष्य की परम्परा राम के जन्म से भी पुरानी है पर राम भी कम पुराने नहीं हैं। परशुराम के रूप में ही नहीं, भाषा के विस्तार में भी राम का सद्भाव भाषा के अवतरण के साथ ही हो जाता है क्योंकि भाषा में राम शब्द बनता है। जब नाम है तो नामी भी है ही पर वह सरस्वती की तरह अन्तर्हित है, निगूढ नहीं है।

हम जिस राम को जानते हैं वह देहधारी है, दशरथ पुत्र दशकन्धर हारी है। लोकाचार की काष्ठा है, गुणों का आगार है। ये राम प्रकट क्यों हुए ? हरि पर लगे नारद के शाप से मुक्त होने के लिये नरदेह धारण कर मर्यादा की रक्षा की, या रावण जैसे तपस्वी और अप्रतिम योद्धा को विदा करने के लिये उनको आना पड़ा ? कोई न कोई तो कारण रहा ही होगा जिसने राम को अवतीर्ण होने के लिये विवश किया होगा ? रहा है। विक्षोम ही एकमेव हेतु है जो सृष्टि का प्रवर्तक है, उसके सार को संग्रहीत करने की प्रक्रिया है।

संसार के उद्गम में यही विक्षोम है सागर मंथन की कथा में समुद्र में विक्षोभ होता है। विक्षोभ संसार की मूल प्रकृति है। नदी स्नान करते वाल्मीकि सारस दम्पति में से एक को व्याध बाण से बिंधते देख अपने मन में भयंकर विक्षोभ का अनुभव करते हैं, तुलसी राम के अलौकिक बलवीर्य को देख भीतर ही भीतर विक्षुब्ध होते हैं, बस, ऐसे ही अवसर राम को अवतरित करते हैं। जिस समय दशरथ के घर में त्रैलोक्य दीपक ने बाल-कलेवर धारण किया उस समय सामाजिक परिस्थितियों ने जन-जन को क्षुब्ध कर रखा था विशेषतया-रावण के सहचरों ने ब्राह्म तेजस् को कुण्ठित करने के लिये योजनाबद्ध तरीके से विघ्न उत्पन्न करने प्रारम्भ कर दिये थे। रावण स्वयं तपस्वी था, उसने किसी ब्रह्मबल को ललकारा नहीं था पर वह आततायियों का संरक्षक था। सूर्य की दुःसह

ऊष्मा को धूल और हवा दोनों ही असह्य बना रहे थे। परिणामस्वरूप जन-साधारण का विक्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। यह विक्षोभ ही एक आकांक्षा थी और इसकी सम्पूर्ति ने ही राम को दाशरथि बनाया, नारायण को नर बनाया।

समाज का विक्षोभ व्यक्ति में व्यक्त हुआ, ठीक वैसे ही जैसे क्षुब्ध देवताओं का आक्रोश देवी के प्रकटीकरण का निमित्त बना। इधर तुलसी बाबा का राम व्यक्ति का राम होकर भी समाज का राम बना। व्यक्ति का राम इसलिये कि अपनी रागात्मिका वृत्ति के उद्रेक से तुलसी का मानस आलोड़ित था और उनके मानस में अवतरण कर रहे राम पर उनका एकाधिकार था। कारण कि कवि की प्रज्ञा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होती है, वह सरस्वती का साम्राज्य है—नितान्त मुक्त, सौम्य और शालीन। जिस राम को तुलसी बाबा अपने मनोमय गर्भ में धारण किये हुए थे वह उनका वैसा ही पालित किन्तु प्रिय था जैसा कौशल्या का। किन्तु अन्तर यही था कि कौशल्या के गर्भ में सामाजिक विक्षोभ का निवारण पोषित हो रहा था और तुलसी के भावगर्भ में उसका एकान्तिक विक्षोभ पल रहा था, इसलिये उनके सियाराम सार्वत्रिक हैं और कौशल्या के राम उसके अपने हैं।

यही स्थिति वाल्मीकि की है। वाल्मीकि आहत क्रौंच की पीड़ा अपने हृदय में अनुभव करते हैं। उनकी विह्वलता व्याध को शाप देने में पर्यवसित होती है पर क्रौंच के मर्मान्तिक कष्ट और क्रौंची के (हा हन्त, हन्त नलिनी गज उज्जहार) दारुण रसभंग से वे मर्माहत हो उठते हैं। उनके मन में एक विश्वजनीन आकांक्षा का उदय होता है कि क्यों कोई किसी को सन्ताप देता है? क्यों कोई लुब्धक किसी निरीह को अपनी कामना का शिकार बनाता है? यह अन्तर्दृष्टि ही उस निगूढ राम का अनुसन्धान करती है। आशय यह कि वाल्मीकि की व्यथा अपना त्राण पाने के लिये एक शरण्य की अपेक्षा से आकुल है—ऐसी ही उदासी में त्रिभुवन विहारी नारद आ जाते हैं। वाल्मीकि प्रसन्न हो उठते हैं, उनकी अनुसन्धित्सु दृष्टि एक सम्बल पा जाती है। वे अपनी व्यथा को कण्ठ निर्गत नहीं होने देते, आर्ष गंभीरता से प्रश्न करते हैं 'नारद तुम

अवाधगति हो, कोई ऐसा व्यक्ति वता सकते हो जो धीरज में हिमाचल, क्षमा में धरती, गंभीरता में समुद्र की तरह हो। जिसके हाथ जानुस्पर्शी, जिसके स्कन्ध वृषभवत् हों, विशाल आँखों वाला, भव्य ललाट और पराक्रमी हो?'

वाल्मीकि के प्रश्न पर नारद सोचते-विचारते नहीं, मन से मार्गण नहीं करते तत्क्षण कह देते हैं—'राम भला, एक व्यक्ति में ये सारे गुण कैसे हो सकते हैं? यह तो गुणों की समष्टि है और इस समष्टि का ही नाम "राम" है। वाल्मीकि अपने हृदय की कोमलता और वुद्धि की निरपेक्षता के तुलापात्र में रा और म को तोलते हैं—फलस्वरूप राम का जन्म होता है। ऋषि के मानस क्रोड में रामभद्र परिपुष्ट होते हैं, उनके समस्त विवेक से मर्यादा पुरुषोत्तम राम रूपाकार धारण करते हैं। कितना आश्चर्य है—समाज की दुःखान्तिका से त्रस्त मुनि का मन एक आकांक्षा से प्रेरित है और उनके आकांक्षित नायक निरपेक्ष हैं। अपनी सृष्टि अथवा निर्वाचन पर मुग्ध होकर कवि गा उठता है—

"प्रसन्नतां या न गतभिषेकत:
तथा न मम्ले वनवास दुःखतः"

वाल्मीकि का पूर्ण पुरुष रनिवास में भी वैसा ही है तो वनवास में भी वैसा ही। यह आवश्यक है—किसी भी स्थिति को पराभूत करने के लिये उससे विपरीत अथवा उग्र प्रयास करना होता है। राम यदि राज्य को देखकर अवलिप्त हो जाते हैं तो अरण्य उनको विषण्ण करेगा ही किन्तु उन दोनों में वे सम हैं, यह समता ही उनकी समता है। इसी के वल पर वे निकल पड़ते हैं। लगता है वे सुर सरिता की तरह नियत पथगामी हैं, उनके अवतरण के लिये सगर और भगीरथ से अधिक श्रम किया है वाल्मीकि ने।

कुछ आलोचक कहते हैं—तुलसी की भक्ति समुज्ज्वल दृष्टि ने राम को पर ब्रह्म के रूप में देखा है किन्तु उनको मनुष्य के रूप में व्यवहारशील करके एक असन्तुलित-सी स्थिति उत्पन्न कर दी है जवकि वाल्मीकि उन्हें पुरुषोत्तम ही मानते हैं और वैसा ही व्यवहार करते है। यथार्थ ऐसा नहीं है—तुलसी के राम, राम के नाम और एक कथा नायक,

परमदिव्य, अनिन्द्य सुन्दर के रूप में परिचित हैं, तुलसी उनके कर्तृत्व पर मुग्ध हैं, उनकी राम के प्रति सहज भक्ति है और इस रागातिशय में परब्रह्म का परत्व और ब्रह्मत्व दोनों ही नगण्य हैं, उनके परम पावन, नयन मनोहारी व्यक्तित्व को मण्डित करने के लिये विश्व के श्रेष्ठ गुण भी अपर्याप्त हैं, इसीलिये तुलसी अनेक वार अपनी असमर्थता और वाणी की सीमा पर खेद व्यक्त करते हैं।

वाल्मीकि राम से बाद में परिचित होते हैं, उनके राम नैमित्तिक राम हैं। वाल्मीकि जागतिक द्वन्द्वों और प्राकृतिक वैषम्य से पीड़ित होकर राम से परिचित हैं इसलिये वे असंगतियों और राम की क्षमता के बीच सन्तुलन बनाये रखते हैं। यही एक मूल अन्तर है इन दो राम-रूपों में।

इस अन्तर के बावजूद दोनों राम-परम समर्थ हैं, दोनों का अगाध विश्वास है। वाल्मीकि के राम गुणों की समष्टि हैं, तुलसी के राम में गुण समाहित हुए हैं इसीलिये वाल्मीकि के राम अत्यन्त विश्वस्त-दीप्त स्वर में कहते हैं—मेरे राज्य में कोई चोर नहीं हैं, कोई व्यभिचारी नहीं है, कोई विधवा नहीं है, पिता के सामने पुत्र की मृत्यु नहीं होती, समय पर वृष्टि होती ही है, ऋतु पर वनस्पतियों फलती ही हैं।

श्रद्धा राम के इस ओजस्वी आख्यान पर चमत्कृत हो सकती है पर वाल्मीकि का सन्तुलन एक गणक की तरह इसे नापता है। प्रारम्भ में—वाल्मीकि जिस व्यक्ति को ढूंढ रहे हैं तथा उसके बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व में जिन विशेषताओं को समाविष्ट करना चाहते हैं उनकी सहज फलश्रुति है, उस क्रिया की स्वाभाविक परिणति है।

समाज के उत्पीड़न में, अपने क्लैव्य से पीड़ित होने वाले वर्ग में एक शाश्वत राम छुपा रहता है। यह पीड़न का प्रसार ही समष्टि में विखरे आत्मविस्मृत 'शिव' की समाधि का भंग करता है और तब करवट लेकर एक सौम्य किन्तु शुष्क पंक (रेतीले दलदल) जैसा रुद्र प्रकट होता है वह दर्शन में मधुर-मोहक होता है पर शक्ति का अप्रतिम रूप रहता है, प्रतिगामी को इस तरह लीलता है जैसे शिशु का विलास या बाल लीला कर रहा हो। दोनों ही राम ऐसे ही मितभाषी हैं,

बड़े-से-बड़ा काम कर के भी वे अपने सम्बन्ध में कोई दर्पोक्ति तो दूर आत्मस्वीकृति तक नहीं करते। शिव के सुभट मदहारी धनुष को तोड़कर भी वे परशुराम को यही कहते हैं—

नाथ ! शंभु धन भंजनि हारा,
होइहि कोउ इक दास तुम्हारा।

ज्ञान चक्षु के खुलने पर यह सारा इतिहास एक शाश्वत सत्य के रूप में गोचर होता है। ऐसा लगने लगता है जैसे राम एक अव्याहत-सनातन सत्ता है, न वह जन्म लेता है न मरता हैं इसीलिये दार्शनिक स्थूल और नित्य के रूप में दुहरी स्थिति मानते हैं। वे कहते हैं—यह अयोध्या स्थूल है, इसमें राम का अवतरण हुआ था, एक नित्य अयोध्या है जिसमें राम सनातन रूप से विराजमान हैं। वृन्दावन के लिये भी ऐसा ही है। फिर इस शाश्वत अयोध्या की स्थिति कहाँ है ? उस कालातीत राम का अव्यय रूप कहाँ है ? इसके समाधान में हम दो स्तर वता सकते हैं एक यहीं जो आभासिक है, दूसरा ज्ञानगम्य जहाँ जाकर वापस नहीं आया जाता। यहाँ छुपे राम का दर्शन करने पर उनकी कृपारूपिणी शक्ति उनके शाश्वत धाम में प्रवेश करने की योग्यता और अधिकार दे देती है।

यहाँ की सामाजिक विडम्बनाओं के परिणामस्वरूप जिस राम का दर्शन होता है वह आभासिक इसलिये रहता है कि उसमें हमारे मन पर अपने मोह लदे रहते हैं, स्नेह-पीड़ा रागद्वेष जैसे आग्रह हमारी दृष्टि को स्फीत नहीं रहने नहीं देते और परिणाम यह होता है कि हम राम से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते, उनसे एकाकार नहीं हो पाते इसलिये राम के दर्शन की आतुरता, उनके दर्शन करने पर एक संभ्रम बना रहता है। जिस दिन यह आतुरता और संभ्रम समाप्त हो जाते हैं हमारी दृष्टि में राम से इतर को अवकाश नहीं बचता उसी दिन हम शाश्वत अयोध्या में प्रवेश कर जाते है, ज्ञानयोग की यह चरम सिद्धि होती है।

विडम्बना यह है कि सुखान्वेषी रावण के राज्य में, लोभ की स्वर्ण नगरी में, मोह को कल्पवृक्ष समझने वाला अज्ञान जब तक है तब तक

रावण का दर्प विकृत मुख हमें गर्वदीप्त दिखता रहता है, उसकी पराक्रम कथायें हमारे ओठों पर नाचती रहती हैं। ऐसी मूढावस्था में राम का दिव्य-सात्विक-आनन्द घन रूप हमें न दिख सकता है, न लुभा सकता है किन्तु जिस क्षण हमें रावण के मुखमण्डल पर विकार कालुष्य दिखने लगेगा उसी क्षण हमारे भीतर राम का ओज प्रकट होने लगेगा। हमें राम प्रिय होंगे, राम के प्रिय अति-प्रिय होंगे। वाल्मीकि के पद्य हमें आत्मदर्शन करायेंगे, तुलसी वावा की सूक्तियाँ हमें हमारे व्यवहार की सूक्तियाँ लगने लगेंगी। हमें राम के इतिहास को खोजने की आवश्यकता नहीं रहेगी। कौशल्या के राम, सीता के राम, लक्ष्मण के राम, हनुमान के राम, सुग्रीव और विभीषण के राम, रावण के राम और तुलसी तथा वाल्मीकि के राम हमारे लिये एक राम, सम्पूर्ण राम वन जायेंगे और यह एकत्व ही नित्य राम से साक्षात् करायेगा।

❀❀❀

राजेन्द्र किशोर की

तीन ऊर्ध्वमुखी कविताएँ

(१)

तुमसे परे मैं अदृश्य पुरुष हूँ
शारदीय आकाश की तरह निरभ्र, उद्‌भासित
प्रसन्न नीलवर्ण, किंतु स्थिर, निराकार

प्रकट मैं तुमसे अंतःभाषित हूँ
तुम्हीं से रूपवान, गतिमय, प्राणवंत
एक अनुरोधित जीवंत शिव

तुम्हारा चुंवन
मेरे अधरों की स्मिति
तुम्हारा स्पर्श

मेरी त्वचा के रोमिल इंद्रध्वज
तुम्हारा कामोद्रेक
मेरी जंघाओं का वरुण-वेग
तुम्हारा महासुख
प्रचंड विस्फोटों से भरा मेरी नाभि का आग्नेय सूर्य

तुम : मेरी प्रिया
मेरा सृजन
मेरी माँ

करो
उस अग्नि का अवधान करो
जो मुझे दे
मेरा भोग
मेरी प्रतिष्ठा
मेरा हिमाच्छादित स्निग्ध कैलाश
मेरा तपः दीप्त पुंसत्व
मेरा साकार ऊर्जस्वित शिवत्व

(२)

भृंगी,
अपने कंकाल में अवस्थित
अपनी मृत्यु में संज्ञाहीन
अपने अज्ञानवश मेरे आशीर्वाद में भी अप्रसन्न
लो, यह तीसरा चरण
नए संवेग का नया सूर्योदय

भृंगी,
खोलो अपनी महांधकार में डूबी आँखें
करो प्रणाम

यह आकाश है—अर्द्धमौन, अर्द्धमुखर
शब्द की इयत्ता
यह पृथ्वी है—अर्द्धगुप्त, अर्द्धप्रकट
गंध की महत्ता
यह मैं हूँ—अर्द्धशव, अर्द्धशिव
सत्य की सत्ता
दृष्टि के मध्य-विंदु से दृश्य
तुम्हारी श्रद्धा
तुम्हीं को अपरिचित
दंभ से अधूरी
मोह से विविक्त

(३)

इतनी करालता में
इतना सौंदर्य
इतनी उपेक्षा में
इतना ममत्व
इतने [illegible]शासन में
इतनी अनुकंपा
इतनी निरपेक्षता में
इतना निजत्व

किसको अर्पित करूँ अपनी कृतज्ञता ?
इसको—
जो मृत्यु है,
तुम्हारा आयोजन ?
या इसको—
जो जीवन,
मेरा अनुरंजन ?

पुण्यश्लोक पण्डित दीनानाथ शर्मा 'नरेडा'

[एक विलक्षण व्यक्ति से परिचित कराना सहजानन्द का विनंम्र आभार प्रदर्शन है और यथाशक्य यह प्रत्येक अंक में प्रस्तुत होगा। अपनी अल्पज्ञता को विज्ञापन एवं आत्मप्रशंसा के डिण्डिम घोष से छुपाने वाले तथाकथित ज्योतिषियों, तान्त्रिकों या भगवानों से भिन्न यथार्थ विद्वानों से परिचित कराना, उनके अद्भुत गुणों के प्रति कृतज्ञभाव से श्रद्धा नत होना ही इस परिचयमाला का मूल हेतु है। इस स्तंभ का प्रारंभ हम स्वनामधन्य पण्डित श्री दीनानाथ जी शर्मा से कर रहे हैं। परिचायक हैं श्री गोविन्द शास्त्री जो उनके रिश्तेदार होने के कारण उनके अन्तरंग को जानते भी हैं और प्रस्तुत भी कर सकते हैं। —सम्पादक]

पण्डित दीनानाथ जी पर लिखने का मन इसलिए नहीं कर रहा कि वे डाक्टर वी० एम्० शर्मा के पिता हैं (डॉ०शर्मा राजस्थान के एकमेव न्यूरो मेडिसिन के प्रोफेसर हैं तथा चिकित्सा में पीयूषपाणि और व्यवहार में सरल तथा स्पष्ट हैं) इसलिये भी नहीं कि वे मेरे मामा रहे हैं और इसलिये भी नहीं कि वे नेहरू परिवार में परमादरणीय रहे हैं बल्कि इसलिये कर रहा हूँ कि जब-जब उनके पास बैठने का अवसर मिला मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मैं ज्योतिष के बोधिवृक्ष के नीचे आ बैठा हूँ।

मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि ऐसे मर्मज्ञ विद्वानों के ज्ञान के कारण ही लोगों का ज्योतिष के प्रति आकर्षण और विश्वास बना हुआ है अन्यथा बड़े-बड़े वक्तव्य देने वाले और अपने को वराह मिहिर का अवतार कहने वाले नक्षत्रज्ञ भी नहीं हैं, वे ज्योतिष और लोगों की आस्था के साथ व्यावसायिक धूर्तता का नाटक करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि एक परम विद्वान् और मर्मज्ञ ज्योतिषी की भविष्यवाणी सदा और सर्वांशत: खरी ही उतरे, यदि यही ज्योतिषीय ज्ञान का नाप है तो जिन लोगों को यह गुण जन्म से ही प्राप्त है वे तो गर्ग और पराशर के अवतार मान लिये जाने चाहिएँ पर ऐसा है नहीं क्योंकि विद्या और व्यवहार दो भिन्न विषय हैं। विद्यावान् विश्लेषण करता है, सूत्र बनाता है और उस

विषय के नीति निर्देशक तत्त्वों का प्रतिपादन करता है इस सारी प्रक्रिया में व्यवहार वा प्रयोग एक आवश्यक आधार के रूप में रहता है किन्तु वह व्यवहार को देखकर सूत्र नहीं बनाता पहले समीकरण बिठलाता है। समीकरण सिद्ध होने पर वह उसको प्रायोगिक स्तर देता है। व्यवहार करने वाला अपनी जगह महत्त्वपूर्ण है, उसकी अपनी कठिनाइयाँ और व्यवहार सिद्ध निर्णय होते हैं जो उस विद्यावान् को सुझाव देते हैं, उसके सूत्र या डिजाइन को परिष्कृत करते हैं। खेदजनक बात यह है कि हम इन दोनों में अन्तर नहीं कर पाते और भविष्यवाणी करने वाले को श्रेष्ठ ज्योतिषी मान बैठते हैं। भला सोचिये एक अच्छे ड्राइवर से मैकेनिज्म की प्रतिष्ठा थोड़े ही होती है !

जन्म-पत्र दिखलाना मेरा शौक नहीं है, न ज्योतिष मेरी कमजोरी। मेरी अपनी कुण्डली का फलित जितना अच्छा मैं जानता हूँ, उतना दूसरा नहीं। फिर भी अपवादस्वरूप जिन ज्योतिषियों ने मेरा जन्म-पत्र देखा और कुछ बताया उनमें सर्वाधिक सही और विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण पण्डित दीनानाथ जी का ही रहा था। पण्डित जी को जयपुर में अधिक लोग नहीं जानते थे पर उच्च और संभ्रान्तवर्ग उनको खूब जानता था। सामन्ती युग में जयपुर नरेश महाराजा मानसिंह और दूसरे नरेशों के यहाँ पण्डित जी का पूरा सम्मान था तो इन्दिरा जी के प्रथम बार प्रधानमन्त्री बनने पर उनका राजतिलक पण्डित जी के ही हाथों सम्पन्न हुआ था उनके ड्राइंग रूम में ऐसे अवसरों के चित्र उनकी सर्वोच्च प्रतिष्ठा की सूचना देते हैं। इस सबके बावजूद पण्डित जी ने मुझे अनेक बार कहा है—"मैं क्या जानता हूँ जयपुर में ऐसे कई विद्वान हैं जो मुझे जीवन भर पढ़ा सकते हैं।"

जयपुर जिले में शाहपुरा के निकटवर्ती छोटे-से गाँव खोरी में पण्डित जी का जन्म हुआ पर अपनी विद्या के बल पर वे भारत के कुलीन वर्ग में पूजित रहे। सफेद अचकन, धोती, जूते, पगडी और बेंत पण्डित जी का बाह्य व्यक्तित्व संवारते थे। साधारण व्यक्ति को भी पण्डित जी तक पहुँचने में कोई अवरोध नहीं था पर तेजस् इतना प्रखर था कि घर के लोग ही अनावश्यक बात करने का साहस नहीं कर पाते थे। उदार

चरित्र पण्डित जी में कृपणता कहीं थी ही नहीं। वे जहाँ भी गये, वहीं काम सुधार कर आये। कई अवसर मैंने देखे हैं जहाँ पैसे या साधन की कमी से काम बिगड़ने की स्थिति उत्पन्न हो गई है किन्तु पण्डित जी यदि ऐसे अवसर पर वहाँ मौजूद हैं तो कोई अभाव या निम्नस्तर की बात नहीं हो सकती। ऐसे वक्त पर अपनी जेब से खर्च कर पण्डित जी प्रसन्न होते थे। दान करने में पण्डित जी को कभी संकोच करते नहीं देखा। आज उनके न रहने पर अनेक परिवार अनाथ से हो गये।

अनावश्यक प्रचार से उनको अरुचि थी। गुणों की प्रशंसा वे मुक्त-कण्ठ करते थे। अभिमान उनको छू नहीं गया था। अपने अन्तिम दिनों जब वे अस्पताल में चिकित्सा करा रहे थे, इन्दिरा जी जयपुर आयी थीं। अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद वे पण्डित जी के स्वास्थ्य समाचार पूछने हस्पताल गई थीं पर इन्दिरा जी याने प्रधानमन्त्री के आने से वे गौरवान्वित नहीं थे प्रत्युत इन्दिरा जी के कृतज्ञ स्वभाव से वे गद्-गद् थे। नित्य तीन घण्टे तक अपने पूजागृह में बैठे बिना वे भोजन नहीं करते थे। दिन-चर्या में बिल्कुल नियमित। उनके गुरु गंभीर स्वभाव और तेजोदीप्त मुद्रा को देखकर उनके निकट बैठने का साहस नहीं होता था अन्यथा विनोद उनके स्वभाव में था। जब कभी वे तरंग में आते थे तो अनेक शास्त्रीय परिहास प्रसंग सुनाया करते थे।

पण्डित जी की प्रतिष्ठा से सभी परिचित थे किन्तु वह कौन-सी विद्या थी जिसके कारण वे प्रतिष्ठित थे—इस रहस्य से शायद् ही कोई परिचित रहा हो। यद्यपि मैंने अपनी तरफ से इस रहस्य को जानने की चेष्टा नहीं की अन्यथा विश्वास है कि वे छुपाते नहीं, फिर भी जो कुछ साधार अनुमान मैं कर पाया उसमें दो तथ्य आते हैं। एक तो यह कि वे साधक थे, आबाल्यकाल से वे भगवती की उपासना करते आ रहे थे दूसरा यह कि नष्ट जन्म पत्र बनाने में वे अत्यन्त निपुण थे। प्रश्न लग्न से या प्रश्नाक्षर से जन्म लग्न बना देना उनके लिये अत्यन्त सरल था। उन्होंने स्वयं कहा था कि एक उडिया विद्वान् साधु ने प्रसन्न होकर यह विद्या प्रदान की थी। उस समय मैंने यह विद्या सीखने की कोई उत्सुकता इसलिये नहीं दिखाई कि संभव है इससे वे मुझे लोभी समझ

बैठे। यथार्थ में मुझे कोई रुचि न थी, न है। हाँ, यदि उनसे सीख लेता तो किसी सत्पात्र को दे डालता। उस समय यह सोचकर चुप रह गया कि किसी दिन पण्डित जी स्वयं प्रसन्न होकर कहेंगे कि यह सूत्र समझ ले पर ऐसा अवसर नहीं आना था, नहीं आया।

पण्डित जी के बड़े पुत्र दिवगत श्री बाल मुकुन्द शर्मा के ग्रन्थ 'रत्न विज्ञानम्' का सम्पादन करने का दायित्व जब मेरे पर आया तब पण्डित के निकट बैठने के अवसर मिले। उन्हीं अवसरों पर पण्डित जी के विगत जीवन के संस्मरण सुनने का सुयोग बना था। यहाँ दो एक संस्मरण सुना रहा हूँ—

काटजू—इन्दिरा जी की मौसी-परिवार से पण्डित जी का निकट सम्पर्क वर्षों से रहा है। इसी सम्पर्क की कड़ी के रूप में एक दिन इन्दिरा जी की नानी याने पण्डित जवाहर लाल नेहरू की सास ने पण्डित जी से पूछा—'पण्डित जी मैं कब मरूंगी ?'

उनके इस प्रश्न पर पण्डित जी स्तब्ध रह गये क्योंकि किसी भी ज्योतिषी के लिये यह बताना जितना कठिन होता है उतना ही जोखिम भरा भी। यह प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं कि वह अपनी मृत्यु का दिन जानकर भी निर्विघ्न बना रहे। पण्डित जी ने इस बात को जितना टालना चाहा वे उतनी ही जिद करती रहीं। आखिर उनसे पिण्ड छुड़ाने के लिये पण्डित जी ने अपने ध्यान से ही चार माह आगे की तारीख बतला दी और यह भी बता दिया कि रात ग्यारह बजे उनका देह छूट जायगा।

पण्डित जी तो यह कहकर भूल गये। वे नेपाल गये हुए थे तभी यहाँ से तार गया—'तुरन्त पहुँचो' पण्डित जी आये और जब उन्होंने देखा तो स्वयं आश्चर्य चकित रह गये क्योंकि उन्होंने बंगले में शामियाना वग़ैरह लगा रखा था और कई तरह के आयोजन कर रखे थे। एक घण्टा वे गीता सुनती थीं, फिर भागवत, फिर रामायण और नाम संकीर्तन हो रहा था। इस सबको देखकर पण्डित जी ने सोचा अब अगर यह जीवित रह गई तो उनकी अच्छी-खासी बदनामी होगी।

संयोग की बात कि अगले दिन पण्डित नेहरू भी आ गये। उनको जब

मालूम हुआ कि एक ज्योतिषी ने उनकी मृत्यु की तिथि घोषित कर दी है और कि वह ज्योतिषी वहीं है। इस पर पण्डित नेहरू कुछ झुंझलाये से पण्डित जी के पास गये और बोले—पण्डित यह बात तुमने किस आधार पर कही ? इस पर पण्डित जी ने कहा—गणित की बात है, मैंने अपनी तरफ से थोड़े ही कहा है। प्राचीन ऋषियों ने जो कुछ कहा, उसी के आधार पर मैंने बता दिया। जवाहर लाल जी ने फिर कहा—वह कौन-सा सूत्र है ? इस बात को टालने के लिये पण्डित दीनानाथ जी ने कहा—आपके साथ के किसी ऐसे व्यक्ति को बुलाइये जिसको अपनी जन्म कुण्डली याद है, मैं गणित के आधार पर बता दूंगा।

संयोग की ही बात की उनके साथ आये व्यक्तियों में एक सज्जन मिल गये। पण्डित जी ने प्रश्न लग्न से ही जन्म लग्न बना दिया जिसे उस व्यक्ति ने सही बताया ? जवाहर लाल जी ने पूछा—यह कैसे बताया ? उस पर पण्डित जी ने टालने के लिये इतनी लम्बी विधि बताई कि असानी से हो ही न सके। फिर भी जवाहर लाल जी ने कागज कलम लेकर वह गणित करना शुरू कर दिया। थोड़ी देर तक वे गणित करते रहे, फिर झुंझला कर फैंक दिया। निश्चित दिन आ गया। रात के ग्यारह बज गये। वह उठकर सोने चली गईं, समय टल गया किन्तु सोने के पन्द्रह मिनट बाद ही खबर आई कि वे चल बसीं।

× × ×

दूसरी घटना उन्होंने सुनाई। महाराज मानसिंह जी के यहाँ उनका आवागमन प्रारंभ हो गया था। एक वर्ष जयपुर में वर्षा नहीं हुई। घोर सूखे की स्थिति हो गई। पण्डित जी, महाराज से मिलने गये। उनके प्राइवेट सैक्रेटरी ने कहा—पण्डित जी वर्षा कैसे नहीं हो रही ? इस पर उन्होंने कहा—वर्षा किस पुण्य से हो, राज्य में दान-धर्म की कमी होने से ऐसा प्राकृतिक कोप हुआ करता है।

पण्डित जी की बात सुनकर ए० डी० सी० भीतर गया और थोड़ी ही देर में पण्डित जी का बुलावा आ गया। पण्डित जी के स्थान ग्रहण करते ही महाराज ने पूछा—पण्डित जी वर्षा कैसे नहीं हो रही ? पण्डित

जी ने कहा—"महाराज ! यह तो प्रकृति की लीला है" इस पर ए० डी० सी० ने टोकते हुए कहा—पण्डित जी जो मुझसे कहा, वही कहिए न !

इस पर पण्डित जी आवेश में आते हुए वोले—'हाँ, 'वह' कहने में मुझे क्या लज्जा आती है ! सुनिये महाराज ! "जब राज्य में दान-धर्म में कमी आने लगती हैं तो ऐसे प्राकृतिक प्रकोप होते हैं ।"

महाराज वोले—अच्छा वताइये क्या-क्या होना चाहिए । पण्डित जी ने कहा—गोचर भूमि छोड़नी चाहिए, सदाव्रत चालू होने चाहिएं, दीन-हीन जनों को अन्न वस्त्र का दान दिया जाय ।

महाराज ने कहा—ये सारी व्यवस्थायें अभी हो जाती हैं, आवश्यक हुक्म जारी हो जाते है । अव वताइये, वर्षा हो जायगी न ?

पण्डित जी—क्यों नहीं होगी ?

महाराज—कव होगी ?

पण्डित जी—जव आप चाहें ।

और तीन दिन वाद भरने वाले गणगोर के मेले के दिन वर्षा होने की वात तय हो गई ।

पण्डित जी ने आगे वताया—यह सव हो गया । उन दिनों मैं कलकत्ता छोड़कर जयपुर में ही वसने की सोच रहा था । एक मकान किराये पर ले लिया था । एकाध सेवक रख लिये थे । मेरे और हुजूर साहव के वीच जो वात हुई थी वह दावा की तरह जयपुर में फैल गई थी । सारे लोग उत्सुकता से चर्चा कर रहे थे—एक पण्डित आया है, वह गणगोर के दिन वर्षा करायेगा । जैसे-जैसे समय वीतता गया चर्चा अधिक फैलती गई । गणगौर की सवारी निकलने में मात्र चौवीस घण्टे रह गये । इस विज्ञापन को देखकर मैं भीतर ही भीतर घवरा रहा था कि अव वर्षा नहीं होगी तो कितनी वड़ी वदनामी होगी । इस वदनामी से तो मर जाना वेहतर । यही सोचकर मैं अपने पूजागृह में घुस गया । रसोइये से कह दिया—मेरे किवाड़ मत खोलना, कल शाम तक मैं अनुष्ठान में वैठ रहा हूँ । जो कुछ हुआ उससे रसोइया भी परिचित तो था ही । उसने सोचा होगा कि पण्डित जी वर्षा कराने का कोई अनुष्ठान या प्रयोग कर रहे होंगे ।

मैंने किवाड़ वन्द करके दीपक अगरबत्ती जलाकर इष्टदेव के सामने अवशभाव से प्रार्थना करना आरम्भ किया, धीरे-धीरे मेरी आँखों से अविरल अश्रुधार प्रवाहित होने लगी। पता नहीं कव रात हुई, कव दिन उगा। मैं यह निश्चय करके पूजागृह में घुसा था कि वर्षा होने पर ही वाहर निकालूंगा अन्यथा मेरी लाश ही निकलेगी। समय का ध्यान नहीं था तो भी अनुमानतः दोपहर के आस-पास का समय रहा होगा कि दरवाजे को जोर-जोर से पीटने की आवाज आने लगी। सुना तो रसोईया कह रहा था—पण्डित जी वाहर आइये, किवाड़ खोलिये, देखिये कितनी जोरदार वरसात हो रही हैं।

मैं आसन से उठा, किवाड़ खोले और देखा तो आकाश में काली घटा छा रही है और तेज वर्षा हो रही है। इस दृश्य को देख कर मारे प्रसन्नता के मेरी आँखें भर आई, गला रुंध गया। वापस जाकर इष्टदेव के चरणों में लोट गया उन्होंने मेरी लाज वचा ली।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ—पण्डित जी की प्रतिष्ठा के रहस्य में एक आधार उनकी तपस्या वा उपासना भी रही है। उनके जीवन को देख कर लगता है तपोभ्रंश के कारण किसी वासना वीज ने अंकुरित होकर मानव देह धारण किया था। किसी भी वस्तु के प्रति सघन आसक्ति उनकी नहीं देखी। बड़े परिवार के मुखिया होकर भी वे अपने अलग कमरे में रहते थे। परिवार से घिरे हुए उनको मैंने कभी देखा नहीं, वे यथार्थ में सार्वजनिक थे, दूसरे लोग ही उनके गिर्द छाये रहते थे, अपने-अपने दुःखों से त्रस्त जन उनकी शरण में निरन्तर आते रहते थे और पण्डितजी सवका त्राण करते थे, कराते थे। जिस समय वे दिवंगत हुए मैं विदेश यात्रा पर गया था रोग शैय्या पर लेटे हुए पण्डित जी को जव मेरी पश्चिम यात्रा का समाचार दिया गया था तो वे विह्वल होकर रो पड़े थे, मारे प्रसन्नता के□

कहाँ हैं—ये लोग ?

• श्री समद नागौरी

पण्डित परमानन्द जी को सब जानते हैं। उनमें एक क्या अनेक खूबियाँ हैं। आप उनको कोर्ट में देख सकते हैं, मन्दिर के चबूतरे पर देख सकते हैं, होटल में देख सकते हैं। उनके घर पर लोगों का आवागमन बना ही रहता है। पढ़े-लिखे वे कम हैं किन्तु कानून कायदे में आलिम-फाजिल हैं। जैसा नाम है वैसे ही परमानन्दी हैं। रात बारह बजे भोजन करते हैं। बात की शुरूआत माँ-बहन से करते हैं। आप इस शैली को गाली कहते हैं पर वे इसे आनन्द समझते हैं। बदले में आप गाली निकालें तो उनको कोई फर्क नहीं पड़ता पर वे इस कस्बे में अपने-आपको प्रतिष्ठित मानते हैं।

उनके चेहरे पर मुस्कुराहट बिछी रहती है, कस्बे में ऐसी एक भी समस्या नहीं होती जिसके समाधान का सेहरा वे अपने माथे पर नहीं सजाते। उनके इर्द-गिर्द नित नये समाचार छितराते-उगते रहते हैं। वे आप से मिलेंगे तो बुलाकर कहेंगे—अरे ओ फलाने ! तूने सुना कि नहीं। वह उसकी छोकरी कल रात से लापता है।

या फिर—'वह है न रधिया, परसों उसके जूते पड़े। अपने आपको बहुत समझता था।'

ऐसे अनेक समाचार उनके पास आते रहते हैं और वे मुस्कुराते हुए चबा-चबा कर इन समाचारों की जुगाली करते रहते हैं। ऐसे आनन्द-दायी अवसरों को जुटाने के लिये वे निःस्वार्थ सहायता करने कोर्ट-कचहरी तक साथ दे सकते हैं। वे आनन्दान्वेषी हैं, सदा प्रसन्न रहने वाले, परोपकारी दो व्यक्तियों की घनिष्ठता उनको रुचिकर नहीं लगती और जो उनको अच्छा नहीं लगता उसे दूर हटाने में वे आलस नहीं करते फिर भगवान् ने उनको ऐसी बुद्धि दी है कि ऐसे मामलों में वे नारद और चाणक्य से कम नहीं रहते ।

उनको देखकर मुझे एक संस्कृत का श्लोक याद आ रहा है, जिसका

भाव कुछ इस तरह है—

'एक बार पण्डित परमानन्द जैसे व्यक्ति ने कहा—'हम तो आज जंगल में जा रहे हैं।' दूसरे ने पूछा—'अरे भाई वहाँ तो शेर रहते हैं।' परमानन्द बोले—'वे शेर मेरे को खा जायँ इसलिये जंगल में जा रहा हूँ।' दूसरा इस बात पर चौंका, उसने सोचा पण्डित परमानन्द शेर पर उपकार करने तो नहीं जा रहे? जरा स्पष्ट करते हूए पूछा—'आखिर ऐसा विचार क्यों कर रहे हैं?' इस प्रश्न पर पण्डित परमानन्द प्रसन्न होते हुए बोले—'तू पूरा बैल है समझता-समझाता कुछ है नहीं। अरे मैं जंगल में गया और शेर मुझे खा गया तो वह आदमखोर हो जायेगा फिर शहर में आकर वह औरों को भी खायेगा।'

× × ×

दूसरे उनके भाई हैं—पण्डित गंभीर जी। गंभीर जी सरकारी दफ्तर में किरानी हैं। उनकी तनख्वाह हाथी के दाँत की तरह खाने की अलग और दिखाने की अलग नहीं है बल्कि खाने के दाँतों के निस्पत दिखाने वाले दाँत बड़े होते हैं वैसा ही हाल उनकी बताने वाली तनख्वाह का है। जहाँ कहीं भी पाँच दस आदमियों के बीच बैठने का मौका आता है वे किसी न किसी तरह यह वाक्य जड़ देते हैं—'सरकार क्या बेवकूफ है जो मुझे एक हजार रुपये देती है?'

पर वे अपनी तनख्वाह का बखान आपको आतंकित करने के लिये नहीं, उदास करने के लिए करते हैं। आप उनकी तनख्वाह की बात सुन कर अपने को छोटा समझें और उस छोटेपन से मायूस हो उठें—बस इतना भर चाहते हैं।

हरदम सिगरेट पीना उनकी पहचान है। सुबह जल्दी उठकर वे किसी रेस्तराँ में जाते हैं और अखबार पढ़ने के बाद शौच जाना उनका नियम है। बोलते कम हैं पर जब बोलने लगते हैं तो जंगली पशु की तरह नाक की सीध में भगते चले जाते हैं। हल्की और घटिया बात उनको नहीं सुहाती।

वे चर्चा अक्सर उन लोगों की करते हैं जो उनसे थोड़ा तेज भगना

चाहते हैं। उनके दफ्तर में जो लोग रिश्वत खाते हैं, उनसे वे नाराज इस लिये नहीं हैं कि रिश्वत क्यों लेते हैं बल्कि इसलिये हैं कि उस रिश्वत के पैसे से वह ऐश करेगा, अपना स्टैंडर्ड बढ़ायेगा—यही उनके अफसोस का कारण है।

उनके पड़ोस में जब टेलीविजन आया तो वे इसलिये उदास हो गये कि वह टी. वी. क्यों ले आया? उस घर की मुण्डेर पर लगा एण्टीना उनको खटकने लगा, शालने लगा और उनके चेहरे पर गम्भीरता की एक परत और चढ़ गई।

किसी भी व्यक्ति का नाम ले दीजिए वे उसके पुरखों तक का इतिहास बखान देंगे। जो कोई भी उठता व्यक्ति है वह उनका कष्ट है। उनके चेहरे पर गम्भीरता परत पर दर परत छा गई है, और हर परत के भीतर एक कचोट है, एक पीड़ा है इस दुःख से मुक्त होने के लिये वे कोशिश करते हैं किन्तु सामने आकर नहीं। दूसरे के कन्धे पर बन्दूक रखने पर उनका निशाना ठीक बैठता है। अक्सर उनको वे लोग ही घेरे रहते हैं जिनको दूसरे नहीं सुहाते।

लोग कहते हैं—काजी जी पराये दुःख से दुबले हुआ करते हैं पर पण्डित जी दूसरे के सुख से दुबला रहे हैं।

× × ×

पण्डित परमानन्द और गम्भीर प्रतीक हैं। हर कस्बे, गाँव और मुहल्ले में ऐसे शख्स मिल जायेंगे। उनको हम आसानी से पहचान भी लेंगे मगर हमारे भीतर भी ये परमानन्द और गम्भीर आसन जमाये बैठे हैं, हम उनको जानते भी हैं लेकिन उनको नापसन्द नहीं कर पाते जैसे रावण के राज्य में रहने वाले राक्षस रावण को बहुत नापसन्द नहीं करते थे।

इसमें कोई शक नहीं कि इन्सान कच्चा दूध पीता है इसलिये गलती करना उसकी फितरत है लेकिन गलती हम इसलिये करते हैं कि ना समझ हैं और हर गलती हमें समझदार बना सके तो हम आदमी बन जायेंगे, एक बेहतरीन इन्सान हमारे भीतर पैदा होगा। इसके साथ ही अगर हम

उन खामियों को देख पायें जो हमारी जिन्दगी को वेमजा कर देती हैं तो हम ज्यादा और सही माने में सुखी हो सकेंगे। जरूरत हमारे सोच और नजरिये को वदलने की है।

सचाई यह है कि हमारा स्वभाव विगड़ गया है, हमारी आदत वदल गई है जैसे पण्डित परमानन्द जी विना गाली के अपनी वात नहीं कह सकते। छोटी-छोटी वुराइयाँ किस तरह हमारी जिन्दगी को वेमजा कर रही हैं—इस पर विचार हम कर ही नहीं सकते. नतीजा यह होता है कि हम ऊँट या सूअर हो जाते हैं। पण्डित परमानन्द के चरित्र में ऊँट घुस गया है जो केवल वुराइयों के काँटे ही पसन्द करता है और गम्भीर के स्वभाव में सूअर पैठ गया है जिसे किसी के शरीर में लगी महक से अरुचि है।

किसी की तरक्की पर खुश होना हम सीख लें तो दुनिया में अनेक आदमी, अवसर और घटनायें ऐसी दिखने लगेंगी जो हमारी खुशी में इजाफा करेंगी। देश की प्रधान मंत्री इन्दिरा गाँधी के कामों को देखकर हम अगर खुश होने लगें, शिवचरण माथुर के मुख्य मंत्री वनने पर प्रसन्न हो सकें और जैलसिंह के राष्ट्रपति वनने पर हर्ष प्रकट कर सकें तो हमारे पड़ोस में आने वाले टेलीविजन पर हमारा भी हक़ हो जायेगा।

दूसरी वात यह भी है कि किसी की तरक्की को नापसन्द करके हम कुढ़ने लगें—यह समझदारी का काम तो नहीं है। हम कुढ़कर उसकी तरक्की को रोक नहीं सकते, उल्टे हमारे जीवन में अशान्ति उत्पन्न कर लेते हैं, इसके साथ ही जिस व्यक्ति के प्रति हम असहनशील हो रहे हैं उसके खिलाफ ऐसी-वैसी वातें भी करेंगे ही और ये वातें उस व्यक्ति के पास भी पहुँचेगी, स्वाभाविक है इससे वह नाराज हो। ऐसी परिस्थिति में हम सोचें कि हमारे व्यवहार और सोच से हम एक निहायत गैर जरूरी सिरदर्द पैदा कर लेंगे।

किसी की टाँग पकड़ कर खिचने की वजाय हम भी दौड़ें तो यह निर्माणात्मक वृत्ति होगी, हम आगे वढ़ेंगे। किसी लकीर को इधर-उधर से काटने से वह घट सकती है छोटी नहीं हो सकती है। उसे छोटी दिखाने

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

श्रद्धा की आँख

● गोविन्द शास्त्री

राजशाही बुरी थी पर भली भी थी। किस तरह बुरी थी और किसलिये भली थी —यह एक लम्बी बहस है और बेमानी भी है क्योंकि हमें उन राजशाही से मतलब नहीं व्यक्ति से मतलब है।

ठाकुर देवी सिंह जी को मैंने देखा है। मेरे पितामह स्व० श्री हनुमान् जी शर्मा उनके गुरु थे और उनके अस्वस्थ होने पर ठाकुर साहब उनकी मिजाज पुर्सी करने आये थे। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था कि उन्हें दूर से देखा जा सकता था जैसे शार्दूल की सुन्दरता को दूर से ही देखा जाता है कि निकट जाने का अवसर भी नहीं था इसलिये साहस भी नहीं था।

उनके सरल राजत्व के अनेक किस्से उस समय भी सुना करता था आज भी वे किस्से फिजाँ में तैर रहे हैं। मेरे पितामह सुनाया करते थे— एक बार एक आदमी आया और उसने कहा—'मैं साग बनाना जानता हूँ। ठाकुर साहब रईस घर से ही नहीं, मन से भी थे। उसको कहा— अच्छा बनाकर खिला।

उसने उस समय जो खर्च बताया वह पचास रूपये था और तुर्रा यह कि उस साग की दो ही प्लेट बनेंगी एक वह बनाने वाला खायेगा और दूसरी ठाकुर साहब। सामग्री की व्यवस्था कर दी गई। साग बनाकर वह ठाकुर साहब को बुलाने चला, संयोग कि ठाकुर साहब उस समय राजकाज में व्यस्त थे बोले—'थोड़ा इन्तजार कर' थोड़ी देर बाद फिर गया तब भी वे काम में व्यस्त थे बोले 'अभी आया' वह फिर चला गया, थोड़ी इन्तजार करके अपने हिस्से का साग खा लिया और ठाकुर साहब के हिस्से का थाली में परोस कर ले गया लेकिन इस बार भी ठाकुर साहब ने दो मिनट रुकने की बात कही तो वह तैश में आ गया और उस साग रोटी को फैंक कर चल दिया। पितामह कहते थे—वह साग एक चौकी पर जा गिरा और आश्चर्य की बात कि उस उकठे काठ में कोंपल फूट

आई।

इस घटना की ऐतिहासिकता पर विचार करने का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि मेरे जैसे व्यक्ति आप्त वाक्य को प्रमाण मानते हैं फिर हमारे लिये आप्त अर्थात् विश्वस्तजन कभी असत्य भाषण नहीं करते थे, इसलिये उन्हें कभी भी अपनी बात को प्रमाणित करने के लिये सौगन्ध खाते नहीं देखा। उस पीढ़ी में लोग धन या पशुबल के आधार पर गण्यमान नहीं होते थे चरित्र और ज्ञान ही सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदण्ड रहता था। धन का सम्मान था पर उस धन के आगमन का साधन क्या है—यह अधिक विचारणीय रहता था। प्रत्येक परिवार अपनी परम्परा का बहुत ध्यान रखता था इसलिये कुल परम्परा के नाम पर ही अधिकांश कार्य होते थे।

वह समय गया, वह पीढी गई, वे मान्यतायें गई। मुझसे कोई पूछे तो मैं उसी समय को अच्छा बताऊंगा क्योंकि उस समय हम कुएँ का पानी पीते थे और कुआँ सबका होता था इसलिये एक का सुख दूसरे को आनन्दित करता था और एक के दुःख से सारा मुहल्ला पीड़ित हो जाता था। आदमी अकेला था ही कहाँ? आज नल का पानी पीते हैं, सबके घर में अलग-अलग नल लगे हुए हैं। न सार्वजनिक स्थान हैं, न बहाने वर्ना शाम को बगीची में शौच आदि करने के लिये जाते तो रामा-श्यामा हो ही जाती थी। इसमें कोई शक नहीं कि उन लोगों के रहन-सहन का स्तर सादा था, और दूसरी तरह के दिखावे भी नहीं थे, फैशन भी नहीं था तो साधन-सुविधाओं का विस्तार भी नहीं था फिर भी सुख था, अपनापन था, एक दूसरे का लिहाज था।

ऐसे माहौल में राजा अगर सच्चरित्र और साधु प्रकृति का होता था तो जीवन महका-महका रहता था ठाकुर देवी सिंह जी ऐसे ही राजा थे। एक बार की बात है, उनके पहरेदार के बारे में शिकायत मिली कि वह रात की डयूटी में सो जाया करता है। उन्होंने उसे बुलाकर चेतावनी दे दी। एक रात उसकी परीक्षा करने के लिये स्वयं रात में आये और दरवाजे को खड़-खाड़या। पहरेदार ने हूं की आवाज दी और सो गया। थोड़ी देर बाद फिर किवाड़ खड़-खड़ाये तो हड़बड़ाकर उठा और दरवाजा

खोला। सामने देखा तो ठाकुर साहब खड़े थे। जब ठाकुर साहब ने कहा—"क्यों रे ! सो रहा था न? इस पर उसने उत्तर दिया—,नहीं अन्नदात !, माला फेर रहा था, सुमेरू आये तभी तो उठता।

इस पर ठाकुर साहब ने मुस्कराते हुए उसे एक रुपया दिया और बोले—'यह तो है तेरी झूठ का इनाम, अगर आयन्दा सोने की शिकायत मिली तो नौकरी से निकाल दूंगा।"

ऐसे हुआ करते थे सदाशय राजा।

अब साहब की धर्म प्राणता और अपनी परम्परा के प्रति जागरूकता की बात पर आता हूँ। एक बार एक बहुत छोटे कर्मचारी-पहरेदार ने आकर सीधे उनसे बात कर ली-इस पर वे बहुत चिन्तित हो गये और अपने से बोले—महाराज ! मेरे चरित्र में ऐसा क्या दोष आ गया? कि मेरे पुण्य प्रताप में कमी कैसे आ गई कि एक बहुत छोटा कर्मचारी सीधे मेरे पास चला आया और बात करने लगा—जब कि, उसे कोई कष्ट नहीं था और न मैंने उसे बुलाया था।

अपने चरित्र और वर्चस्व के प्रति इतना खयाल रखने वाले ठाकुर देवी सिंह जी के राज्य में सर्वत्र सुख-शान्ति थी। उनके बाहरी व्यक्तित्व से बड़ा एक व्यक्तित्व और था जो परम सात्विक और उत्कृष्ट साधक का था। लोग इसके बारे में नहीं जानते थे किन्तु एक घटना ऐसी घटी जिससे लोग उनके इस गुण से परिचित हो पाये।

बात इस तरह हुई कि करीरीवाले की आँखों की रोशनी जाती रही। डॉक्टरों की दवा की लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। कई महीने अंधेपन की मजबूरी भोगता रहा। उन दिनों और आज भी ऐसी मान्यता रही है कि डिग्गी के कल्याण जी ने अन्धों को आँखें और पंगु को पैर दिये हैं। आज के वैज्ञानिक युग में हम ऐसी बातों को मूर्खता कह सकते हैं या फिर उनको किसी युक्ति या तर्क से सिद्ध करके कार्य कारण भाव बता सकते हैं फिर भी दो अवस्थायें सुनिश्चित हैं—एक यह कि विज्ञान हर प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता दूसरा यह कि विश्वास का अपना संसार है और उस संसार में अघटनीय कुछ भी नहीं, असंभव कुछ होता ही नहीं।

डिग्गी के कल्याण जी ने अनेक अन्धों को आँखें दी थीं—इस जन-श्रुति का ऐतिहासिक विश्लेषण व परीक्षण तो किसी ने किया नहीं पर ने विश्वास ने इसे श्रद्धा का फल समझा और इस पर सन्देह किया नहीं। करीरी वाला भी इस विश्वास से प्रेरित होकर डिग्गी पहुँचा। डिग्गी कल्याण जी के मन्दिर में निराहार पड़ा रहा आख़िरकार एक दिन उसकी श्रद्धा ने चमत्कार दिखाया। उसके पास एक दिव्य व्यक्ति आया और बोला—"तुम यहाँ क्यों पड़े हो ? जाओ, तुम्हारे गाँव का ठाकुर देवीसिंह पूर्व जन्म का पुण्यात्मा और उच्च साधक है। उसके पैर पकड़ लेना, तुम्हारी दृष्टि वापस आ जायगी।"

इस बात से चमत्कृत होकर करीरी वाला चौमूं लौट आया। ठाकुर साहब जयपुर रहते थे। उनसे मिलना सरल नहीं था। सामन्ती युग में सर्वत्र ऐसी ही व्यवस्था थी। राजों, महाराजों, ठाकुरों तक पहुँचना कठिन होता था क्योंकि उनके रहने वाले सेवकों में रौब अधिक था, व्यवस्था का जिम्मा भी उन पर ही रहता था। करीरी वाले ने ठाकुर साहब की दिनचर्या के बारे में जानकारी करके यह जाना कि ब्राह्म मुहुर्त में ठाकुर देवीसिंह जी बगीचे में घूमते हैं। उस समय उनसे सरलता से मिला जा सकता है सो जैसे-तैसे व्यवस्था करके वह उनके महल के पास ही रातभर बैठा रहा और जैसे ही वे घूमने के लिये जाने लगे, उनके पैरों से लिपट गया। आश्चर्य, उसको दृष्टि मिल गई। ठाकुर साहब देवीसिंह जी ने जब उसे उठाया और पूछा कि क्या बात है ? इस तरह क्यों पैरों में लिपट रहा है तो करीरी वाले ने अपने अन्धे होने से लेकर वापस दिखने तक की सारी कहानी कह सुनाई। इस पर ठाकुर साहब ने उसे कहा—जा, इस बात का जिक्र किसी से मत करना। जो मिले उससे यही कहना कि डिग्गी के ठाकुर कल्याण ने आँखें दी हैं।

ठाकुर साहब की यह इच्छा थी कि यदि ऐसी बात का प्रचार हो गया तो उनके लिये समस्या हो जायगी और इससे उनके व्यक्तिगत जीवन में अवरोध आयेगा, वे मौन एवं अविज्ञापित ही बने रहना चाहते थे□

दीपाली

● कुसुम जैन

जयशंकर कालीचरण के निकटस्थों में हैं। देशी और विदेशी साहित्य का अध्ययन अजीर्ण होने तक कर चुके हैं। अपनी आलोचना प्रतिक्रिया शून्य होकर सुन लेने का साहस कई लोगों में मिल सकता है किन्तु उसमें से यथार्थ को परख लेने की क्षमता विरले लोगों में ही हुआ करती है और जयशंकर ऐसे ही विरलों में हैं।

जयशंकर की सरलता गुरु कालीचरण से कम नहीं है किन्तु उनका क्रोध भी रुद्र से कम नहीं। उनके क्रोध को विगलित करना है तो गुरु को ले आओ। जयशंकर नियम पूर्वक गुरु के पास आते हैं, दोनों में क्या गुह्य भाषण हुआ करता है कोई नहीं जानता। उनके वार्तालाप में किसी को आने से रोका नहीं जाता किन्तु लोग जाते ही नहीं दोनों कब मिले थे, कहाँ मिले थे कोई नहीं जानता।

आज जयशंकर कुछ अतिरिक्त उत्तेजित हैं। गुरु काली चरण अपने कमरे में ध्यानस्थ हैं जयशंकर अवाध गति हैं, उनके लिये आज्ञा और प्रतीक्षा आवश्यक नहीं हैं। गुरु से आँख मिलते ही उनका आवेश मन्द पड़ता है। गुरु कहते हैं—'क्यों पाण्डे आज चेहरे पर कर्कशता क्यों है ?'

'कई दिनों से कुछ कहने को मन कर रहा है किन्तु कह नहीं पा रहा हूँ।'

'कारण ?'

'कारण ? कारण यही कि हम ठहरे संसारी जीव हमें लोक मत का भी सम्मान करना पड़ता है और आपके प्रति जो अलक्षित आत्मीयता जुड़ गई है उसका भी ध्यान रखना पड़ता हैं।'

'दीपाली के मेरे पास रहने की वात को लेकर ही तुम कुछ कहने को व्यग्र हो न ?'

'हाँ, ।'

'जिस दिन दीपाली मेरे पास आई थी उसी दिन मैंने आज की बात

की कल्पना कर ली थी फिर भी मैंने उसे अपने पास रखा और रखूंगा ।'

'आपके चरित्र को लेकर, आपके और दीपाली के एकान्तवास को लेकर मुझे कई तरह की अप्रिय और अशोभन बातें सुननी पड़ती हैं । मैं उनसे अघा गया ।'

'लोगों की बातें तुम्हें अप्रिय इसीलिये लगती हैं कि तुम मुझे प्रेम करते हो, तुम भी उन लोगों में मिल जाओ तो उन बातों में तुम्हें भी रस आने लगेगा । प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि वह स्वरूप को ही पसन्द करता है । प्रकृति में इतना सुकुमार होता है कि विपरीत से संघर्ष नहीं कर पाता, म्लान हो जाता है । प्रेम उत्सर्ग कर सकता हैं आक्रामक नहीं होता । तुम्हारी मेरे प्रति भावनात्मक आसक्ति ही तुम्हारी व्यथा और उत्तेजना का मूल है । इस आसक्ति को छोड़ दोगे तो तुम भी निर्मल बन जाओगे । आक्रमण करने में तुम्हें भी सुख मिलेगा, वर्त्तमान के इर्द-गिर्द देखने का अभ्यास होगा ।'

'आप बात का विश्लेषण करने से बचना चाहते हैं । ग्रन्थि को ढ़ीला करने से काम नहीं चलने का उसे खोलकर ही सुख और हल्कापन पाया जा सकता है ।'

गुरु बीच में ही बोल पड़े—

'तुम्हारी दो आँखें दो तरफ देखती हैं । एक आँख से तुम समाज और लोकमत को देखते हो, दूसरे से अपनी अज्ञेय सत्ता को और स्थिति यह है कि तुम जितना इधर जाते हो उतना ही उधर भी और जब कभी इसका मूल्यांकन करते हो तो पश्चात्ताप और अवसाद के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता । एक के हो रहो । लोकापवाद को और समाज के अर्थवाद को तुम मेरे पास लाते हो । मैं उसके प्रति तनिक भी रुचि नहीं रखता किन्तु वह तुम्हें प्रिय है इसलिये मुझे भी तुम्हारे प्रति मेरे मन में एक स्निग्ध भाव है और तुम अनजाने उसका दुरुपयोग कर डालते हो ।'

'इसी अवसाद से त्राण पाने के लिये आपके पास आता हूँ । आपके स्नेह भाव का दुरुपयोग मैं नहीं करता किन्तु मेरी प्रकृति से मैं मुक्त नहीं हो सका । मैं चाहता हूँ आप विवादास्पद न रहें । लोग आपकी वास्तविकता को समझें, आलोचना न करें ।'

'यह भी तुम्हारा दुराग्रह ही है। लोगों के अपने माप हैं, अपेक्षायें हैं, आग्रह हैं। मैं उनमें उपयुक्त होने की चेष्टा नहीं करना चाहता, यह मेरा अपना सुख है। विवादास्वदता को तुम बुरा समझते हो, एकांगी रहना चाहते हो' एक ही पक्ष को पकड़े रखना चाहते हो—क्या इससे तुम द्वैत में छुपें एकत्व को पहचान पाओगे ? आसक्ति को भोगो समर्पण मत करो। विवादास्पदता में ही पूर्णत्व है। सत् को जान लेना पर्याप्त नहीं; असत् को, सत् के अभाव को जानने से सत्य का सम्पूर्ण ज्ञान मिलता है। एक ही रेखा के दो छोर हैं—सत् और असत् इसी सत् और असत् के बीच में यह संसार अवस्थित है। जिस दिन असत् नहीं रहेगा उस दिन सत् विकल हो उठेगा। तुम्हारे ही देह में देखो न, नाभि से ऊपर प्राण का क्षेत्र है और नीचे अपान का क्षेत्र है। प्राण ऋषि के समान पवित्र है, प्रीणन करने वाला है, ऊर्ध्वगति है, प्रत्येक रोम को स्वच्छ पवित्र रखता है। अपान अधोगति है, देह का मलकोश इसी के क्षेत्र में है। दोनों की बिल्कुल विपरीत गति और प्रकृति है किन्तु दोनों में कितना प्रगाढ़ सम्बन्ध है, एक के विना दूसरा नहीं रह सकता, एक के व्यक्तिक्रम से दूसरा क्षीण होने लगता है।

जो लोग मेरे में दोष देखते हैं वे भी देखते तो हैं। शायद वे अधिक सही हैं या तुम अधिक स्पष्ट हो—यह निर्णय करना मेरा काभ नहीं है। एकत्व को पाने के लिये द्वित्व को पहचानना जरूरी है। दो स्तरों पर जीने की अपेक्षा दोनों स्तरों को जोड़ने वाले सूत्र को जीना अधिक व्यावहारिक रहता है।

'मेरा विनम्र आग्रह है—ऐसी स्थिति क्यों बने ?

नीतिशास्त्र ने कहा है—अतथ्यस्तथ्यौ वा हरति महिमानं जनरवः

(लोकमत सच हो या गलतहो व्यक्ति की महिमा को नष्ट करता है)

'तुम मुझे इस स्थिति से उबारना चाहते हो या नई स्थिति में रखना चाहते हो ? क्या तुम यह सोचते हो कि दीपाली को यहाँ से निष्कासित कर दूं। मेरे लिये यह सम्भव नहीं। वह मेरी स्नेहपालित है, उसके मेरे पर अगणित उपकार हैं, वह मेरी सहचरी है।'

'आपके मन में दीपाली के प्रति कैसे भी भाव हों, उसने आप पर

क्या उपकार किया—'यह मैं नहीं जानना चाहता किन्तु इस तरह के अपवाद से समाज में एक अप्रिय विरोध जनमता है। लोग समझते हैं यह स्वैराचार समाज का तिरस्कार है, यह असन्तोष यदि इसी तरह घनीभूत होता गया तो कुछ भी अघटित घट सकता है।'

'अघटनीय तो घट ही नहीं सकता। तुम यही तो कहना चाहते हो न कि समूह में बल होता है, उसकी अपनी शैली और निर्णय होता है। यह संहति बल मुझे अपमानित करने पर उतारू हो जायगा तो मैं उसके सामने बहुत हीन ठहरूंगा, वह मुझे रौंद कर निकल जायगा। यही तुम्हारी आशंका है, यही तुम्हारा आत्मरचित भय है-है न। तुमने एक के बल को आँका नहीं। अपमान की अन्तिम स्थिति मृत्यु ही है न, जीवन के प्रति मोह है इसीलिये मृत्यु का भय है, मोह के उत्स में प्रच्छन्न रूप से पनप रहे भय के वृक्ष को तुम नहीं पहचानोगे। जो तुम्हारे लिये भय है वही मेरा बल है, मृत्यु मेरा बल है। माँ काली का उपासक हूँ मैं। वह स्वयं काल है, उसके आगे जीवन का मोह लेकर कोई बैठ नहीं सकता। समाज को आने दो, उसके अन्धे आवेश को उबलने दो, वे मेरा वध भी कर जायेंगे तो मुझे क्या आपत्ति है? मेरी माँ यदि यही चाहती है तो उसे अन्यथा करने के लिये मैं कभी याचना नहीं करूंगा। तुम या वे जिसे अपमान समझते हैं, वह मेरे लिये भी अपमान का सूचक बने तो बात बन सकती है।'

'भविष्यत् के गर्भ में क्या है—इसे जानकर भी क्या होगा? नियति की अनिवार्यता में परिवर्तन करने की बात मैं नहीं सोच रहा और न ही मैं यह चाहता हूँ कि दीपाली को निष्कासित किया जाया। मेरा तो एक विनम्र आग्रह है कि दीपाली अपने सम्पर्क में बहुत कम रहे।'

'मन करता है—तुम्हें ऐसी राय देने के लिये दण्डित करूँ और दण्ड यही कि तुम्हारा यहाँ आना वर्जित कर दिया जाय किन्तु नहीं, ऐसा नहीं करूँगा। देखो, दीपाली के सम्पर्क को कम करना मेरे बस की बात नहीं है। हो सके, तुम ही कोशिश कर देखो। दीपाली सर्वतन्त्र है, एम्. एस्. सी. पास है, पूर्ण वयस्क भी। वह अपना मत बनाने के लिये स्वाधीन है। मेरा कोई भी निर्णय उस पर आरोपित नहीं किया जाता।'

'आरोप की बात नहीं है, न ही दीपाली को मनाने या सुझाने की कोई बात है। वह केवल आपकी इच्छा की बात है आपके मन की परि-सीमा में जब तक दीपाली है तब तक वह स्वतंत्र नहीं है, आप अपने मन की पकड़ ढीली करेंगे तभी वह स्वरूप को जान पायेगी।'

'मेरे मन की दीपाली पर अधिकार जताने वाले तुम कौन ? तुम्हारे समाज वालों को मेरे और दीपाली के बीच जो असामाजिक अतएव अनैतिक जैसा दिखता है वह उनकी भ्रान्ति है। वे इतने संकीर्ण हो चुके हैं कि अपनी-अपनी काराओं में कैद रहना चाहते हैं। शब्दों को उन्होंने शहतीर बना लिया है और उससे वे स्वयं ही नहीं सिमट रहे हैं दूसरों को भी सीमित करते जा रहे हैं। जो स्नेह मुक्ति दे सकता था उसी से ये लोग बांधने का काम कर रहे हैं।

माना—माँ हमें जन्म देती है, हमारे जीवन में उसकी सर्वोपरि सत्ता है इसलिये ज्ञान के साथ-साथ हम उसे प्यार करने की बजाय सम्मान देने लगते हैं, लज्जा और संकोच हमारे सम्बन्धों को सीमित करने लगते हैं। उसके प्रति अन्यथा भाव लाना हम मनुष्यों के लिये अप्राकृत है किन्तु इसके देखे देख हम बहन, बेटी, शिष्य, मित्र आदि शब्दों के खण्ड बोध में भी जीया करते हैं। कितनी विचित्र बात है सभी लोग एक ही मकान में रहकर भी वर्जनाओं की सीमा रेखा में जीया करते हैं।

नारी की सम्पूर्णता और महिमा को जानने के लिये कारा और सीमा की दीवार को ढाहना पड़ेगा। बहन कह कर तुमने उसके एक रूप को देखा, बेटी कह कर तुम उससे बड़े बन बैठे, उससे कुछ भी लेना तुम्हारे लिये निषिद्ध हो गया और पत्नी कहकर तुमने उसे केवल भोग्य मान लिया। एक ही स्नेह को पाने-पहचाने के लिये तुमने कितने खण्ड बोध बना डाले। मैं इस सबसे सहमत नहीं हूँ। नारी मेरे लिये सर्वस्व है। माँ का उपासक हूँ न, माँ का विस्तार इतना है कि उसमें तुम्हारे ये सारे सम्बोधन समा जाते हैं। रक्षा के लिये नृसिह की, विघ्ननाश के लिये गण-पति की और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये लक्ष्मी नारायण के रूप की उपासना क्या हमारे समग्र को खण्डित नहीं करती ? हमारे एक माँ होती है वह

(शेष पृष्ठ ९० पर)

भारत—विदेशी दृष्टि में

[भारत सहस्राब्दियों से विश्व का आकर्षण केन्द्र रहा है। कोई इसे सोने की चिड़िया समझ कर लुटेरे के रूप में आया कोई इसके अविजित धर्म को पराभूत करने आया, मन्दिरों को ध्वस्त करके चला गया, कोई इसकी रत्न प्रसू धरती पर शासन करने के लोभ से प्रताड़ित होकर आया तो कोई इसे मानवीय और नैतिकता के मूल्यों का उत्स समझ कर आया। परिणाम यह रहा कि यह भारत भूमि विश्व का आकर्षण बनी रही आज सहस्राब्दियों के दासता के पश्चात हम विश्व के सबसे बड़े प्रजातन्त्र के रूप में उदित हुए हैं, विश्व की पंचायत हमारे बल को पहचानती तो है स्वीकार नहीं करना चाहती विशेष रूप से वे राष्ट्र जो साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी रहे हैं। उनके अपने मोह, स्वार्थ और अहंकार उनको दुराग्रही बना रहे हैं अन्यथा भारत अपने पंचशील के बल पर ही अपनी सत्ता और महत्ता को प्रतिष्ठित करके रहेगा।

यहाँ हम ऐसे ही प्रेरणादायी विचारों की श्रृंखला का प्रारम्भ कर रहे हैं। इस लेख के विचार श्री रामसुन्दर जगन्नाथ बलकरण हैं। बलकरण भारत वंशी हैं पर चार पीढ़ियों से दक्षिण अमेरिका में सूरिनाम के नागरिक हैं। सूरिनाम की संसद के सदस्य रह चुके हैं बलकरण संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपने देश का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। अनेक बार विश्व भ्रमण कर चुके बलकरण साठ पार कर चुके हैं। उनके विचार विवेकपूर्ण हैं और दृष्टि सर्वदिक्स्पर्शी। अभी जब वे भारत आये थे तो उनसे बहुत विस्तार से बातचीत हुई थी उस वार्तालाप के सार संक्षेप के रूप में यह लेख प्रस्तुत है।

—सम्पादक]

भारत मेरे आजा-आजी का देश है। इसके साथ हमारा भावनात्मक सम्बन्ध है। माना, हम सरनामी है, वही हमारी जन्मभूमि है फिर भी भारत हमारे प्राणों में बसा है। वहाँ का हर भारतवंशी भारत को तीर्थ समझता है, उसकी एक ही आकांक्षा रहती है कि वह अपने आजा-आजी

की जन्मभूमि के दर्शन कर आये। पता नहीं क्यों यह धरती हमें अपनी-अपनी-सी लगती है। संसार में घूम चुका पर किसी देश की धरती ने मुझे इस तरह दुलार से नहीं खैंचा जितना इस देश की धरती ने।

आज से १३० वर्ष पहले लालारुख नाम का जहाज यहाँ हमारे पुरखों को लेकर आया था। उससे पहले कई जहाज आ चुके थे पर उसके बाद कोई नहीं आया। यहाँ भारत में गाँधी जैसे नेताओं ने आवाज उठाई थी कि ठकेदार लोग भारतीय श्रमिकों और कारीगरों का शोषण करते हैं, ये लोग बहुत कष्ट में हैं। अंग्रेज इनको मानवीय सुविधा और अधिकार भी नहीं दे रहे। स्मरण रहे पहले सूरिनाम अंग्रेजों के अधीन था फिर परिवर्त्तन के समय यह डचों के हाथ चला गया। उस समय जो लोग यहाँ आये उनको कष्ट तो सहना था ही, नितान्त एकान्त और सघन जंगलों को काटकर बस्तियाँ बनानी थीं, भूमि को कृषियोग्य बनाना था सो कष्ट तो सहना ही था। यहाँ भारत में कौन-सा सुख था। बाढ़, महामारी, बेरोजगारी और महँगाई से पीड़ित होकर ही ये लोग इतनी दूर आये थे। इन पृथु पुत्रों का श्रम ही आज सूरिनाम की धरती को शस्य सम्पन्न किये हुए है। उन पूर्व पुरुषों के श्रम का फल ही हम लोग खा रहे हैं। बहुत सुखी हैं हम लोग। यहाँ रहकर हम इतना कुछ नहीं कर पाते। उस समय यदि गाँधी जहाजों का आना नहीं रुकवाते तो आज हम उस देश में ३८ प्रतिशत नहीं रहते। ऐसा सूरिनाम में ही नहीं ब्रिटिश गायना, ट्रिनिडाड जैसे चार देशों में है। मैं साम्राज्यवादी नहीं हूं फिर भी ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि अगर हम वहाँ बहुमत में होते तो उस देश की शासन-व्यवस्था में हमारा भी स्थान होता। यह तो आपको भी मानना ही पड़ेगा कि हमारा धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज उन सब से मेल नहीं खाता। आज हमारे देश में काले हैं, चीनी हैं, मलायी हैं, इन सबके सम्मिश्रण के कारण एक निश्चित चित्र नही बन पाता। यदि किसी भी एक जाति का बहुमत होता तो वह बड़े भाई की तरह रहता और शेष छोटे भाई की तरह उसके पोषणीय-पालनीय होते।

मेरे इस प्रश्न पर कि क्या वहाँ भी साम्प्रदायिक भावनायें जोर करती हैं, ? वे बोले—वहाँ हम हिन्दुस्तानी हैं, हिन्दू या मुसलमान नहीं। आपके

यहाँ—बँगला देश के समय जो लड़ाई हुई उस समय एक मौलाना साहब आये थे। उन्होंने इस प्रकार का भेदभाव उत्पन्न करने की कुचेष्टा अवश्य की थी किन्तु वह बात बन नहीं सकी। उन्होंने ही हमारे यहाँ की संसद् में किसी सदस्य के माध्यम से एक प्रश्न उठवाया था जिसका स्पष्ट आशय था कि बँगलादेश में रह रहे मुसमलानों पर हिन्दुस्तान आक्रमण कर रहा है, उन पर अत्याचार कर रहा है। इतने जीवन में मैंने भारतीय दूतावास को उसी समय सक्रिय होते देखा। इस प्रश्न का उत्तर देने में थोड़ा समय लिया गया था और इसी बीच ट्रिनिडाड के भारतीय दूतावास का एक अधिकारी मेरे घर आया और उसने चित्रों, समाचार पत्रों एवं अन्य दस्तावेजों के आधार पर मुझे इतना आश्वस्त कर दिया कि वह आक्षेप स्वतः दुर्भावनापूर्ण लगने लगा।

प्रासंगिक रूप में यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि विदेशों में स्थापित दूतावास और राजदूत भारत के हितों की चिन्ता नहीं करते। वे इस पद को मौज-मस्ती का पद समझते हैं, भारत की उपलब्धियों से परिचित कराने का या भारत से सम्बन्धित जानकारी देने का किंचित् भी प्रयास नहीं करते। भारत ने ट्रिनिडाड के दूतावास के माध्यम से वहाँ के भारतीयों को भारतीय संस्कृति-धर्म व चिन्तन से जोड़े रखने के लिये बहुत पैसा खर्च किया किन्तु आज वहाँ बसे भारतीय, भारत से सम्बन्ध तोड़ चुके, भारतीयता से उनको लगाव ही नहीं रहा, हिन्दी उनके लिये विदेशी भाषा हो गई इसके मुकाबिले सूरिनाम पर कुछ भी धन खर्च नहीं किया गया, न दूतावास ने भारतीयता के सम्पोषण के निमित्त कुछ किया फिर भी सूरिनाम के भारतीय हिन्दुओं के त्यौहार मनाते हैं, विवाह शादी, कथा-पुराण भारत की तरह ही करते हैं, हिन्दी बोलते समझते हैं। एक बात सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि हमारे यहाँ के रेडियो और टेलीविजन पर एक निश्चित समयावधि का कार्यक्रम देने की व्यवस्था सरकार की तरफ से है। हाँ, सनातनी और आर्यसमाजियों की नोंक-झोंक चलती रहती है फिर भी होली-दीवाली दोनों एक ही मंच पर बैठते हैं।

भारत में तीन बार आ चुका और हर बार इसकी प्रगति को देख

कर प्रसन्न हुआ। आप यहाँ रह कर अपनी गति का अन्दाज नहीं लगा सकते। आपको आजाद हुए कितना-सा समय हुआ है? आपके पड़ोसी देश को देखिये—वहीं का वही है। हालांकि सैनिक शासन में राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। आप के यहाँ पूर्ण प्रजातन्त्र है इसलिये राष्ट्र उन्नति कर रहा है। आप के यहाँ के लोग जब यह कहते हैं कि भारत पर इतना ऋण है, तो मुझे दुःख होता है क्योंकि विकासशील राष्ट्र पर ऋण भी चढ़ता है, मुद्रास्फीति का सामना भी करता है। आप इसी तथ्य से यह क्यों नहीं समझना चाहते कि आप की गति कितनी तीव्र है जिसमें दूसरे देशों से प्राप्त ऋण, विश्व बैंक का अनुदान तथा घाटे का बजट बना कर भी पूरा नहीं पड़ता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रगति का लाभ सामान्य जन को नहीं मिल रहा, इतनी जल्दी और इतने बड़े देश में ऐसा हो भी नहीं सकता फिर भी सामान्य जन के जीवन में परिवर्त्तन आ रहा है। हर बार मैंने देखा है कि नये-नये उपनगर उभर आते हैं, गाँवों में भी पक्के मकान और दूसरी जीवनोपयोगी सुविधाओं का प्रसार होता जा रहा है। एशियाड, निर्गुट राष्टों का शिखर सम्मेलन करके आपने तीसरे विश्व को संसार के मंच पर खड़ा कर दिया है फिर रोहिणि छोड़कर आपने उन राष्ट्रों में विश्वास का वातावरण उत्पन्न कर दिया है जो अपनी सुरक्षा के लिये तथाकथित बड़े राष्ट्रों के मुँह ताका करते थे।

एक जमाना था,—जब आपके यहाँ भाखड़ा बाँध बनाने के लिये विदेशी मस्तिष्क लगा था, चण्डीगढ़ की परिकल्पना आपने आयात की थी और इसके लिये आप को पैसा खर्च करना पड़ा था। पहले आप तैयार मशीनें आयात करते थे, उन मशीनों के बनाने में वहाँ के लोगों को रोजगार मिला था। आज स्थिति यह है कि आपके यहाँ के कारीगर बाहर जाते हैं, इंजिनीयर और डाक्टरों का निर्यात होता है। आप टैकनीक् बेच रहे हैं। विश्व की श्रेष्ठ वैज्ञानिक उपलब्धियों में भारतीयों का योगदान है। आप निर्यातक हैं। इंगलैंड की स्वास्थ्य सेवाओं में भारतीय मूल-आधार बने हुए हैं, ब्राजील जैसे देश में तीन हजार भारतीय इंजिनीयर काम कर रहे हैं विश्व में ऐसा कौन-सा देश है जिसके नव-निर्माण में भारतीयों का

योग नहीं है ?

मेरा निश्चित विश्वास है कि एक दिन भारत अपनी खोई प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। वैसे भी आज तक भारत संसार को दिशा दर्शन करता रहा है। मुझे याद है एक वार जव मैं पढ़ ही रहा था तो हमारे गोरे अध्यापक ने वताया था कि विटेमिन की खोज भारत में हुई। उसका इतिहास कुछ ऐसे था कि इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देशों की भेड़ों में एक बीमारी हो जाती थी जिससे उनके पिछले पाँव टकराने लगते थे। उस बीमारी पर खोज करते हुए एक गोरा भारत में भी आया। हिमालय की उपत्यकता में उसने देखा कि किसी भी भेड़ के ऐसी बीमारी नहीं है तव उसने एक भेड़पालक से पूछा—कि यह बीमारी उनके यहाँ क्यों नहीं होती है ? इसके उत्तर में उस अपढ़ भेड़ पालक ने वताया कि वे लोग अपनी भेड़ों को खाने में हरी पत्तियाँ व ऐसी ही एक अन्य घास देते हैं। इस पर गोरे ने पूछा कि वे भेड़ को क्या कहते हैं ? गड़रिये ने कहा—भेड़। अनुसन्धान कर्त्ता ने पता व परीक्षण करके विटामिन की खोज की और उसके लिये भेड़ का वी लगा दिया। अर्थात् विटामिन वी जिसका परिज्ञान आपके यहाँ के गड़रिये को रहा था।

दूसरा देखिये—संसार को आपने सागवान की व शाल की लकड़ी दी। यह लकड़ी नाव वनाने में सवसे अच्छी रहती है। भारत में वहुत पहले नाव वनाने की कला का विकास हो चुका था। राजा दशरथ के दो मंजिला नावें थीं जिन पर एक साथ दो सौ व्यक्ति यात्रा कर सकते थे और ऐसी नावों का पूरा वेड़ा उसके पास था—यह वात भी हमें गोरे लोग ही वताया करते थे।

अधिक समय नहीं हुआ—एक गोरे ने पुस्तक लिखी थी—'भारत ने संसार को क्या दिया ?' इस पुस्तक में उसने पुराने ग्रन्थों से उद्धरण दे देकर उन सारी चीजों की जानकारी दी थी जो आज के विज्ञान के लिये आज भी चुनौती हैं। इस पुस्तक में उसने केवल सूचनायें एकत्रित की थीं फिर भी इसकी खूब बिक्री हुई।

ये सारी वातें मैं केवल इसलिये लिख रहा हूँ कि भारत एक महान् देश है। आप भारत का नाम लेकर सारे संसार में पूजित हो सकते हैं।

जावा-सुमात्रा-थाई-कम्बोडिया-मलेशिया में आपके राम प्रतिष्ठित हैं, चीन और जापान में बुद्ध, अमेरिका में रामकृष्ण का नाम लेकर सम्मानित हो सकते हैं।

दुःख तव होता है जब एक गोरे के सामने आप हीन-भाव से पीड़ित हो जाते हैं। मैं जब किसी गोरे को देखता हूँ तो मेरा भारतीय रक्त एक गर्व से दीप्त हो जाता है क्योंकि मैं जानता हूँ कि इनका इतिहास कितना है। रोमनों के पतन के बाद ये उभरे हैं और जो वैज्ञानिक है वह इनकी भौगोलिक आवश्यकता है किन्तु जब कभी किसी भारतीय को एक गोरे के सामने विनम्र भाव से समर्पित होते देखता हूँ तो मेरे आत्म-सम्मान को एक चोट लगती है। इन लोगों ने आपका शोषण किया, आपके श्रम, यहाँ के वैभव को लेकर ये सम्पन्न हुए, आज भी आपके श्रम और बुद्धि को लेकर ये प्रगतिशील बने हुए हैं। इस सबके बावजूद आप इनके सामने एक याचक-सी पराजय भावना प्रदर्शित करते हैं तो अफसोस होता ही है।

आज भारतीय जन मानस अमेरिकनाइज् होना चाहता है, इम्पोर्टेड नाम पर ही मरता है, वैसे ही कपड़े पहनकर उसी लहजे में अपने को ढालकर अग्रणी बनना चाहता है, यह पराजय है। आपके यहाँ के वातावरण में जो अनुकूल है, रुचिकर है, सुलभ है उसे व्यवहार में लाइये। ऐसे लगता है जैसे वास्तविक पराजय अर्थात् मानसिक पराजय अब हुई है। वे गोरे अपने आपको सम्मानित बनाने रखये के लिए आज भी बहुत सारे प्रलोभन दे रहे हैं और आप हैं कि उनकी चाल को न समझ कर उनको प्रभु जैसा समझे जा रहे हैं। आप अपने जातीय और राष्ट्रीय गौरव को समझिये और मित्रता से नीचे मत जाइये □

(पृष्ठ ३४ का शेष)

के लिये उसकी बगल में एक लम्बी लकीर खैंच दी जाय। जिन लोगों ने अपने जीवन में कोई लक्ष्य नहीं बनाया वे ही इस तरह की कुण्ठाओं से पीड़ित रहते हैं। कितने ताज्जुब की बात है कि लोग अदना-सी बात पर अपने जीवन में अशान्ति घोल लेते हैं, दूसरे को नुकसान देने की ताक में अपना कितना हर्जा कर बैठते हैं ?

मेरी विदेश यात्रा

● गोविन्द शास्त्री

माँ की कृपा थी कि १९८२ में पश्चिमी देशों की यात्रा का निमंत्रण मिला। आमंत्रित करने वाले थे वहीं के नागरिक और प्रयोजन था प्राचीन भारतीय विज्ञान के विषय में जानना।

इस प्रवास के संस्मरण लिखने के लिये कई पत्रों की तरफ से आग्रह आया पर आलस्यवश नहीं लिख पाया। दूसरी बात यह भी थी कि क्या लिखूं—वहाँ जो देखा, वह चौंकाने वाला तो था नहीं और न मैं इस भावना से ग्रस्त था कि इंग्लैड रिटर्न या अमरीका रिटर्न जैसी उपाधि का बोझ ढोऊँ। सच पूछा जाय तो मैं उनको इण्डिया रिटर्न करने गया था और कर भी आया। इस प्रवास में जो जिज्ञासु निकट आये वे मेरे अपने बन गये। उनके सुख-दुःख में मेरा भी हिस्सा होने लगा और उनमें से कुछेक इस भारत की पुण्यभूमि का स्पर्श करने आ भी चुके। आगे भी आते रहेंगे।

ये संस्मरण इतिक्रम से नहीं स्वच्छन्दवृत्ति से लिखे जा रहे हैं और अशोक जैन याने सहजानन्द याने आप सभी पाठकों का स्नेह बल ही मुझसे बलात् लिखवा रहा है। तो मैं एकदम से आपको कुरसाव ले चलता हूँ जो कैरेबियन में एक छोटा-सा टापू है पहले यह डचों का अधिकार क्षेत्र था, आज यह फ्री-पोर्ट है किन्तु हांग-कांग और सिंगापुर जैसा नहीं। यहाँ विदेशी वस्तुओं का व्यापार इतना विपुल नहीं है, यह पर्यटन स्थल है और अमेरिका के शीत की ठिठुरन में गर्मी का आनन्द देने वाला टापू होने के कारण पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र है। पर्यटन ही यहाँ की आय का प्रमुख स्रोत है। वर्षा वर्षभर में ५ से १० सेण्टीमीटर चारों तरफ समुद्र से घिरा रहने के कारण हवा के झोंके चलते रहते हैं।

हवाई अड्डे से शहर तक टैक्सी १० डालर लेती है। अधिकांश देशों में हवाई अड्डे की दूरी इतनी ही किराये की रहती है।

परमारिबो से उडा था। डी. सी. या ७३७ बोइंग था। रास्ते में

पोर्ट आफ् स्पेन (ट्रिनिडाड की राजधानी) रुक कर चलना था। पार्ट आफ् स्पेन से चलकर कुरसाव चौवीस घण्टे ठहरना था। रास्ते में मशीन की खरावी के कारण अरूवा उतरना पड़ा। पाइलट ने यान्त्रिक गड़बड़ी की वात नहीं कही थी, इससे यात्रियों में खलवली मच जाती। किन्तु उसकी वात से यह अन्दाज लग जाता था कि विना शिड्यूल के उतरना किसी खास कारण से ही होता है और मौसम खराव नहीं होने पर भी रुक रहा है तो यान्त्रिक गड़वड़ ही एकमात्र कारण है। अपना सन्देह दूर करने के लिये उतरते ही जब वाहर निकला तो इन्जीनियरों का दल जहाज के पैंदे में मशीनों को देख रहा था। वहीं ज्यूरिच् जा रहा जहाज भी उतरा हुआ था, मुझे भी ज्यूरिच् होते हुए हालैंड जाना था। स्टेवार्ड से कहला भी दिया कि सीट हो तो सीधा चला जाऊँ। सीट थी भी पर मना कर दिया।

चारों ओर इन्द्रनील मणि-सा निर्मल सागर लहरा रहा है। कैरेवियन का दक्षिण-पश्चिमी भाग वहुत गन्दला है। व्राजीलिया की अमेजन तो विशालनद है ही, दूसरी छोटी-मोटी अनेक नदियाँ गंदा पानी उण्डेलती रहती हैं। अटलाण्टिक ही वास्तव में क्षीर सागर है। कुरसाव के भव्यतम होटल में आ गया हूँ। ७५ डालर रोज का किराया है। सिंगल और डवल रूम में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। किराये में भी १०-१२ डालर का अन्तर रहता है क्योंकि पलंग तो इतना बड़ा होता ही है कि उस पर तीन आदमी सो जायें फिर भी कम रहे तो सोफा को आसानी से आराम देह वैड में वदला जा सकता है। सभी कुछ करीने से सजा हुआ है, सफाई का पश्चिम में विशेष ध्यान रखा जाता है। एक अकेले व्यक्ति के लिये इतना बड़ा कमरा बहुत भारी रहता है। रेलवे की थ्री टायर में घण्टों यात्रा कर सकने वाले व्यक्ति के लिये यह खुली-खुली-सी जगह खाली सी लगती है।

सात या आठ मंजिल के विशाल होटल का विस्तार समुद्र पर्यन्त है। वाहर की तरफ घूमने के विचार से निकलता हूं और आदत न होने से चावी भीतर ही छोड़ देता हूं तव ध्यान आता है कि कमरे का ताला आटोमैटिक है। वगल के कमरे बन्द हैं—विवश नीचे जाता हूँ। नौकर

दूसरी चाबी लाता है, कमरा खोलता है और भीतर से वन्द करने के अतिरिक्त ताले समझाता है। आश्चर्य है, वाहर से केवल एक ताला लगता है जिसे भीतर से हैण्डल घुमाकर खोला जा सकता है किन्तु भीतर से तीन ताले लगते हैं याने खाली कमरे का कोई भय नहीं किन्तु भीतर रहने वाले को वहुत सुरक्षित रहना पड़ता है।

वाजार में घूमने निकल पड़ता हूँ। खाने-पीने की असुविधा तो शाकाहारी को रहती ही है। पैक् भोजन के अपरिचित नामों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है? डच् साम्राज्ञी का जन्मदिन होने से आज छुट्टी है। सारे वाजार वन्द हैं। सुनसान गलियों में से गुजरना सुखद नहीं लगता। कहीं-कहीं कालों का दो चार का समूह वहुत आशंकित कर देता है। जिन्स पहने वे लोग जव देखते हैं तो घूरते-से लगते हैं और आशंका-ग्रस्त पैरों में तेजी आ जाती है।

पता नहीं ये काले मन से क्यों पराजित हो गये हैं? अमेरिका जैसी सम्पन्न राष्ट्र की धरती का शस्य श्यामल इतिहास इसी के परिश्रम ने लिखा है। इसी वज्रकाय ने अपने पौरुष फल का आस्वाद करने योग्य वनाया है, गुलाम और स्लेव् जैसे शव्द को इसी के पूर्व पुरुषों ने ढोया है और लगता है उस ढोवन का आटण (आटण एक मारवाडी शव्द है जो उस चमड़ी के लिये उपयोग किया जाता है जो कठोर वस्तु के सम्पर्क से मोटी-खुरदरी और निष्प्राण हो जाती है जैसे वैलों के गर्दन में जूआ रखने की जगह) इसके रक्त में पड़ गया है और वह अव छुड़ाये नहीं छूटता।

इसमें सन्देह नहीं कि दर्पदष्ट अमरीकियों के प्रोपेगण्डे ने इनके गुणों और उपलव्धियों से कभी भी विश्व को परिचित नहीं होने दिया पर अपने को अभिव्यक्त करने के लिये इन्होंने कव प्रयत्न किया? मार्टिन लूथर किंग के सिवा इस काले के सम्मान को स्थापित करने के लिये किसने आत्महवन किया? लुमुम्वा जैसे व्यक्ति के सद्‌गुणों और संघर्ष कथा से लोग अपरिचित हैं पर ईदी अमीन को सव जानते हैं क्योंकि ये गोरे अपने को उच्च सिद्ध करने के लिये दूसरों को छोटा वताने में निपुण हैं और ऐसी घटनाओं का ढिंढोरा पीटते हैं। भारत के लिये भी ये "संपेरों और वाजीगरों तथा राजे महाराजों का देश' कहा करते थे।

काले की यह आत्म पराजय ही अमरीका में माफिया बन गई है।' उनके मन में छुपा हीनभाव हिंसक बन कर अपनी पहचान बनाना चाहता है। रंगभेद के कारण होने वाले दंगों और सामाजिक स्तर पर नम्बर दो का नागरिक होने की कुण्ठा और उत्पीड़न को सहते-सहते यह अपनी दृष्टि में भी उपेक्षित हो गया है। अन्यथा क्या कारण है कि आज तक के वैज्ञानिक और दार्शनिक इतिहास में काले का कहीं नामों-निशाँ नहीं दिखता।

इसी दैन्य ने इसे आलसी बना दिया है। कई देशों में मैंने इसे देखा है, लोगों से इसकी स्थिति के बारे में पूछा है तो एक ही तथ्य सामने आया है कि यदृच्छातुष्ट ये लोग उन देशों में भी आगे नहीं बढ़ पाये जहाँ इनको सुविधा रही थी। लिंकन और कैनेडी के सिवा इनको सामान्य नागरिक का स्तर देने की पहल किसने की?

जैसा कि ऊपर कह आया हूँ—यह पहले डचों के आधीन था। घूमते-घूमते राजमहल तक आ गया हूँ। फ्रांसीसी शैली पर बने विशाल राजप्रासाद के प्रांगण में खड़ा रहना बहुत प्रिय लग रहा है। सैकड़ों वर्ष पुराना यह प्रासाद आज भी नया-सा दिख रहा है। स्थापत्य कला नयन मनोहारिणी है। यद्दपि इसमें उत्कीर्णन या रंगों की बारीकी नहीं है पर एक विशालता है, प्रथम दृष्टि में प्रभावित करने वाली भव्यता है।

टापू के दूसरे भागों में जाने का साहस नहीं होता क्योंकि भौगोलिक चेतना मुझमें न के बराबर है और कार में बैठकर यात्रा की जाती है घूमा नहीं जाता। ऐसी स्थिति में अकेलापन खटकता है। वापस होटल में आ जाता हूँ। फाइव् स्टार होटल का अर्थ समझने लगा हूँ इसलिये होटल को ही पूरी तरह देखकर सन्तुष्ट होना श्रेयस्कर मान लेता हूँ।

होने को यहाँ भी गोरों का ही राज्य था किन्तु डचों का गोरापन निखलेप है। साम्राज्यवादी आकांक्षा उनमें नहीं है। जिन-जिन देशों में उनके उपनिवेश रहे थे, उन-उन में उन्होंने वहाँ की जनता को पूरे सम्मान के साथ रखा, उसका शोषण नहीं किया। हाँ, शासन व्यवस्था के जो प्रांसगिक लाभ हैं वे तो उनको मिले ही। इसके अतिरिक्त जब कभी किसी उपनिवेश ने स्वतंत्रता की मांग की उन्होने निःसंकोच अपना

अधिकार उठा लिया। फाकलैण्ड पर समूचे ब्रिटेन की नौ सेना का आतंक जमाने जैसी कुचेष्टा उनके स्वभाव में नहीं है। डचों के संम्बन्ध में प्रसंग-वश अन्यत्र लिखूँगा अभी तो होटल में ही घूम लेता हूँ।

शाम होने में अभी देर है। होटल का दक्षिणी भाग समुद्र की लहरों को छू रहा है। एक बड़ा दालान है, वीच में तरणताल है, कोने में ट्रम्पेट और दूसरे वाद्यायंत्र रखे हैं। ट्रम्पेट पर काले का ही अधिकार हैं। चपक साफ किये जा रहे हैं। अनेक टेवलें हैं जो अभी खाली हैं किन्तु अन्धेरा होने के साथ ही यहाँ एक नई दुनिया प्रकट होने लगेगी। हर टेवल के पास लगी कुर्सियाँ भर जायेंगी, मदिरा पात्रों में कल-कल करती वारुणी उछाल भरने लगेगी। इस दृश्य की कल्पना करते ही वातावरण का अप-रिचय भय के रूप में उभर आता है। जव सारा ही समुदाय मदिरावासी हो जाय तो वहाँ शिष्टाचार और मानवीय संहिता की वात नहीं रहती, मदिरा का उच्छृंखल-स्वच्छन्द राज्य हो जाता है। क्या पता उस समय ये आक्रामक हो उठते हों?

दालान से आगे वालकनी है, लताकुंज में वहाँ वैठने के लिये कुर्सियाँ हैं। पाँच छः सीढियाँ चढ़कर ऊपर जाते ही जिससे साक्षात् होता है वह शुभ्रवर्णा तन्वंगी है जो चार इंची स्तनावरण और इतना ही कच्छा पहने पलंग पर चित्त लेटी है। उसकी नयनाभिराम देह यष्टि और सम्मोहक मुद्रा को देर तक देखने का लोभ उपजता है किन्तु आगे चल पड़ता हूँ क्योंकि सूर्य स्नान इन लोगों का सुख है और इनको ऐसी मुद्राओं में देखना अशिष्टता। थोड़ी-सी गर्मी होते ही योरुप समुद्र की रेत पर आ जाता है और सागर की उन्मुक्तता में वस्त्रों का आवरण अप्राकृत रहता है। इससे भी अधिक नग्न लोग मिल जायेंगे।

एकान्त कुर्सी पर जा वैठता हूँ। सामने सघन नील जलधि फैला है। किनारे पर इतना स्वच्छ जल है कि पैंदा साफ दिखाई दे रहा है पर पानी से मुझे हमेशा से डर लगा है कारण की तैरना सीखने की कोशिश में मैं तीन वार डूव चूका हूँ। एक भी नदी इस द्वीप में नहीं है इसलिये नदी का दृश्य उत्पन्न करने के लिये इन्होंने एक छोटी-सी नहर बना रखी है। छोटी-छोटी नावें दन्नाटे से इधर-उधर घूम रही हैं। आगे चलकर एक

पुल बना हुआ है जो बड़ी नाव आने पर किवाड़ की तरह खुलकर उसे रास्ता दे देता है। कम-से-कम साठ फीट की ऊँचाई पर बैठा हूँ, ऊंचाई से नीचे समुद्र में झाँकना भी एक सिहरन पैदा करता है।

साँझ घिरने लगी है। नीचे सहन में आर्केस्ट्रा बज चुका है। ऊँचे-से पुल पर रोशनी का नाच होने लगा है। महल-बाजार एवं अन्य स्थान जगमगा रहे हैं। दिन भर भूत की तरह कमाने वाले ये लोग रात के बादशाह होते हैं। सभी पश्चिमी देशों में रात का संसार बहुत उन्मादपूर्ण होता है। दिन की व्यस्तता से इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। पेरिस या फ्रांस के नीम उजाले वाले नाच घरों की बाहर की रौशनी चुंधियाने वाली होती है तो भीतर का माहौल चौंकाने वाला। मैं अपने कमरे में लौट आता हूँ।

कमरे में लौट आया हूँ। कमरे के तीनों ताले बन्द करके पलंग पर लेट गया हूँ। कल चल देना है यात्रा का विचार आते ही वापसी के समय जहाज के इंजन में आई खराबी याद आ जाती है। मन में भय का बीज एक क्षण में अंकुरित होकर महावृक्ष बन जाता है। कल का जहाज एक साथ साढे दस घण्टे उड़ेगा। इतनी लम्बी उड़ान, निरन्तर उड़ान और चार लाख किलो वजन का यह अड्डारा और नीचे अथाह जलराशि ! याद आ जाती है वह खबर जब एयर इण्डिया का सम्राट्र बम्बई से उड़ान भरते ही समुद्र में डुबकी लगा गया था, कितनी दर्दनाक मृत्यु हुई होगी।

सुखद पलंग इस विचार के आते ही शूलशैय्या बन जाता है। यह जानता हूँ कि देह नश्वर है, प्राण का इससे संयोग अनित्य है और जीवन से चिपके रहने का मोह व्यर्थ है फिर भी एक भय मेरे समग्र अस्तित्व को निगले जा रहा है। मैं इस भयवाहन मन को बहुत समझाता हूँ कई तरह की युक्तियाँ देता हूँ किन्तु यह अनागत में चला गया है और अत्यन्त मोहमुग्ध होकर श्वेत अंधकार (कुहरे) की तरह बुद्धि के निःस्पृह प्रकाश को भासित नहीं होने देता। आनन्द की मन्दाकिनी को विशाल शिलाखण्ड की तरह रोक देता है। बहुत उद्दण्ड शिशु की तरह स्वेच्छाचारी होकर सब कुछ अस्त-व्यस्त किये दे रहा है। मेरे भीतर ही दो अस्तित्व उभर आते हैं। एक मृत्यु की सार्थकता एवं अनिवार्यता को मानते हुए निरु-

दिग्न रहना चाहता है, दूसरा उसे झुठलाना चाहता है मैं इस कल्पना केन्द्र मन को कहता हूँ—अच्छा, चलो नहीं चलते हैं पर यहाँ तो रह नहीं सकते अन्ततोगत्वा यहाँ से जाना ही पड़ेगा और जब भी जाना होगा यहीं वायु मार्ग है। पर नही मानता, और अशान्त हो उठता है। इसे समझाने के लिये फिर दूसरी युक्ति देता हूँ—तुम पहली बार जा रहे हो, इनका तो रोज का काम है। यह कोई चन्द्रमा पर उतरने का पहला प्रयोग थोड़े ही है। लेकिन इसका भी कोई असर नहीं होता। अन्ततः एक उपचार दिखाई पड़ता है मैं इससे प्रश्न करता हूँ—गये महीने छींतर की मृत्यु हुई। गले के कैंसर से वह किस तरह वह तार-तार-करके मरता रहा एक-एक श्वास किस तरह अनेक मृत्युओं की पीड़ा की यातना देता रहा, उसकी अपेक्षा यह दम घुटकर मर जाना, कुछ क्षणों से ही इस देह का छूट जाना कितना सुगम सहनीय है। मेरी इस सोदाहरण युक्ति का आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ा और बाद की मेरी सारी यात्रा आन्नदमय रही □

आशिक हो सौ साल पुराना
जो हर तौर-तरीके से वाकिफ हो।

राजस्थानी के वर्चस्वी कवि पीथल। प्रकृति से सरस और व्यवहार में मधुर। दूसरा विवाह किया था। पत्नी भी गुणग्राही और कवि की प्रतिभा से सम्पन्न थी। एक दिन कवि पीथल-शीशे में देखकर अपने सफेद बाल नोच रहे थे। कवि-पत्नी ने जब कक्ष में प्रवेश किया और कवि को श्वेत केश लुंचन करते देखा तो मुँह मोड़कर खड़ी हो गई। पीथल को पत्नी की यह मुद्रा और व्यवहार अप्रिय लगा। वे बोले—

पीथल ! धोला आविया बहुली लग्गी खोड़।
कामण मत्त गमन्द ज्यों ऊभी मुक्ख मरोड़ ॥

अर्थात्—पीथल अब सफेद बाल आ गये हैं, देह में कई तरह के खोट लगने लगे हैं, कामिनी (पत्नी) भी मस्त हाथी की तरह मुँह मोड़कर खड़ी हो गई है।

कवि-पत्नी पति की अन्यथा वृत्ति से खिन्न हो गई। बोली—

हल तो धूणा धोरियां पन्थज घग्घां पांव।
नरां तुरां अर वनफलां पक्का-पक्का साव ॥

अर्थात् नर, घोड़ा और वनफल जितने पकते हैं उतने ही मधुर होते जाते हैं।

पीथल पत्नी की इस उक्ति पर बहुत प्रसन्न हुए।

व्यसन

● श्रवण कुमार ढियोले

व्यसन का अर्थ विपत्ति होता है किन्तु आजकल हम इसे लत के लिये काम लेते हैं। हरेक लत एक प्रकार की विपत्ति ही होती है क्योंकि वह छुटाये नहीं छूटती। जिस चीज को हम शौकिया करते हैं वह धीरे-धीरे हमारी कमजोरी हो जाती है। कुछ लोग शारीरिक लत के शिकार हो जाते हैं कुछ मानसिक लत के। व्यायाम करना भी एक लत है जिसका सीधी सम्वन्ध शरीर से है जिस दिन एक पहलवान व्यायाम नहीं करेगा उस दिन उसका शरीर शिथिल और मन उदास वना रहेगा। भगवान् की उपासना करनेवाला यदि नित्यकर्म नहीं कर पाता है तो उसका सारा दिन ही आलस्य में निराश-सा वीतता है। लत का सवसे ज्यादा असर पड़ता है अफीम का। अफीमची को वक्त पर अफीम नहीं मिलने पर उसकी आँख में गीड, मुँह में लार, आने लगती हैं, शरीर मृत के समान निष्प्राण हो जाता है।

होता यह है कि व्यायाम जैसा शारीरिक अभ्यास धीरे-धीरे मन का अभ्यास बन जाता है और अभ्यास जड़ मन म्लान हो जाता है। ज्ञातव्य है कि क्लान्ति शरीर और म्लानता मन का विषय है। मजे की वात यह कि किसी भी चीज के निरन्तर होते रहने से मन उस अभ्यास के प्रति संवेदनशील नहीं रहता जैसे सिगरेट पीने वाले को सिगरेट की गंध नहीं आती या तम्वाकू खाने वाले को तम्वाकू से कोई उत्तेजना नहीं होती। भगवान् का भजन करने वाले भी अक्सर यह शिकायत करते-रहते हैं कि उनका मन नहीं लगता याने कि मजा नहीं आता। यह सव उस लत का ही स्वभाव है।

धीरे-धीरे लत तीव्र होने लगती है। शराब के पैग से शुरू हुआ सिल-सिला वोतल पर आ जाता है, नतीजा यह होता है कि उसकी आजादी खत्म हो जाती है और एक लाचारी सवार हो जाती है। उस आदमी की पहचान वह नशा या लत वन जाती है। नशेवाज अपनी लत

को जायज सिद्ध करने के लिये कई तरह के वहाने और दलीलें गढ़ लेते हैं। कोई मनोरंजन के लिये, कोई गम-गलत करने के लिये तो कोई उत्तेजना पाने के लिये नशा करता है किसी को मौसम से बचाव करने के लिये कोई व्यसन करना पड़ता है। कई लोग, कई दलीलें—कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वह शौक आखिरकार एक मजबूरी बन जाता है, एक विपत्ति की तरह हमारे ऊपर घिर आता है।

हम व्यसन का अर्थ विपत्ति ही लेते हैं और इसका कारण ढूंढ़ते हैं तो नतीजा यह निकलता है कि यह ऐसी विपत्ति है जिसे हम बुलाते हैं, जिसे हम पैदा करते हैं। हमारा शरीर जिस चीज के बिना चल नहीं सकता वह तो हमारे जीवन का आधार है किन्तु हम चला कर ऐसी चीजों या आदतों को जुटा लें जो निहायत जरूरी न होकर भी बेहद जरूरी हो जाती हैं—यह हमारी गलती है। प्रकृति हमें यह नहीं कहती कि हम झूठ बोलें, सिगरेट पीयें, शराब का शौक करें या अफीम खायें। हम शरीर को जबर्दस्ती एक आदत या दूसरे शब्दों में व्यसन की विपत्ति दे देते हैं और धीरे-धीरे वह शरीर की जरूरत और मन की आदत बन जाती है। पहले-पहल तम्बाकू खाने पर सिर चकराने लगता है, जी घबराने लगता है कारण कि वह हमारे शरीर और स्वास्थ्य के लिये उपयोगी नहीं है फिर भी हम खाने लगते हैं तो हमारे शरीर में उस विष को खपाने की प्रतिविष की व्यवस्था होती है और उसी अनुपात में एक अतिरिक्त उत्पादन या खास किस्म की व्यवस्था उस विष की माँग करने लगती है। यही माँग मन पर खटकती है। जिन लोगों का मन कमजोर रहता है वे व्यवसन विवश हो जाते हैं जिनका मन मन्सूबे का पक्का होता है वे उसी वक्त छोड़ देते हैं। शरीर की वह अतिरिक्त व्यवस्था भी धीरे-धीरे सामान्य हो जाती है। ऊपर हमने भगवान् के भजन को भी आदत ही कहा है, उसे भी व्यसन के ही दर्जे में रखा है किन्तु यह व्यसन ऐसा है जिससे आदमी को असली शुकून मिलता है, उसे एक रूहानी ताकत मिलती है, उसके मन के मैल छूटते हैं। यह समझ लिया जाय कि हत्या तो हत्या ही है किन्तु देश या धर्म के लिये कुर्बानी देने वाले शहीद होते हैं और गलत काम के लिये

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

सर्पदंश और तेजा जी

● गोविन्द नारायण राजमिस्त्री

मैंने अपनी जिन्दगी में कोई चमत्कार नहीं देखा लेकिन यहाँ जो वात लिख रहा हूँ वह मेरे जीवन की एकमात्र अविश्वसनीय लेकिन सच घटना है।

वैसे राजस्थान में तेजाजी के नाम से सभी लोग परिचित हैं। साँप के काटे का इलाज कराने के लिये तेजाजी के यहाँ ले जाने का रिवाज है और तेजाजी के चवूतरे पर साँप खाये व्यक्ति को ले जाकर एक ढोल वजाते हुए दीपक अगरवत्ती जला कर उपले पर घी का होम करते हुए तेजाजी को भराने की एक आम रिवाज है। इस सारे काम में ढोल के बजाने का एक खास तरीका होता है, बीच-बीच में तेजाजी की जय बोलते हैं। इसी माहौल में किसी खास आदमी में तेजाजी भरते हैं। हो सकता है—ऐसे केस मिल जायँ जिनमें तेजाजी के चवूतरे पर इलाज होने के बाद भी कोई मर गया हो, पर मैंने ऐसी बात नहीं सुनी।

उन दिनों मैंने जयपुर से १० किलोमीटर दूर महापुरा ग्राम में संस्कृत विद्यालय का मकान वनाने का ठेका ले रखा था। ठेकेदार थे मेरे भाई साहव। इसी वजह से वहाँ गाँव में ही डेरा डाल रखा था। गर्मी के-से दिन थे। एक रात तेजाजी के चवूतरे पर ढोल बजने की आवाज सुनाई दी। अकेला था, नींद नहीं आ रही थी। सोचा, देखें यहाँ जोत किस तरह ली जाती है? तेजाजी किसमें भरते हैं, कैसे भरते हैं, किस तरह सर्प काटे का इलाज होता है—ऐसी ही कई वातें जानने-देखने की इच्छा से उठ कर वहाँ जा पहुँचा।

वहाँ गया तो देखा कि मरीज आदमी नहीं जानवर है और जानवर भी एक कुम्भी भैंस है। ढोल वजने लगा। भैंस के शरीर में मोटी-मोटी गाँठें पड़ रही थीं और वह विष के प्रभाव से अर्ध मूर्च्छित-सी हो रही थी। काफी देर तक ढोल बजने के बाद एक आदमी में तेजाजी का आवेश हुआ। वह मस्त होकर कूदने-फांदने लगा फिर उसने करीब आठ फुट

लम्बा एक सेल (भाला) उठाया और उस भैंस की गाँठों में लगाकर खून चूसने लगा। एक एक करके उसने आठ-दस गाँठों का खून चूसा, वे मोटी-गाँठें अपने आप वैठती गई। एक गाँठ उसने छोड़ दी यह कर कि जो कुछ भी मनौती आप मान रहे हैं, वह पूरी करेंगे उसी दिन यह अपने आप वैठ जायेगी। इस गाँठ से आपको अपना वचन याद रहेगा।

यह सारी बात हो जाने के वाद मैंने उस सेल को उठाकर देखा, वह विल्कुल ठोस था, थोड़ा-सा भी सूराख उसमें नहीं था। दूसरी वात यह थी कि भैंस के शरीर की गाँठें हमारे सामने ही वैठ गई थीं। अगर यह माने कि उस सेल की नोक से छेद करके उसमें जमे पदार्थ को उसने निकाल दिया था जिससे वे गाँठें वैठ गई थी तो यह वात भी नहीं थी क्योंकि भैंस और उस व्यक्ति के बीच में आठ फीट की दूरी थी तथा भैंस जहाँ वैठी थी वहाँ एक भी वूंद खून की नहीं गिरी थी, न गाँठ को खोलने के लिये कोई छेद ही उसकी चमड़ी में किया गया था। इसके वजाय वह आदमी जिसके शरीर में तेजाजी आ रहे थे, अपने मुँह से काला-काला खून थूकता रहा था।

मैंने अपनी बुद्धि से सभी तरह से परख कर देख लिया था, हाथ की सफाई जैसी कोई गुंजाइश नहीं थी। इसके बाद अगली बार जब दशमी आई तो वे लोग सवामणी करने आये, उस दिन तक भैंस के गाँठ बनी हुई थी किन्तु अगले दो दिन में वह वैठ गई और भैंस पूरी तरह ठीक हो गई।

यह घटना देखने से पहले मैंने अखवारों में डाक्टरों के लेख पढ़े थे जिन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की थी कि झाड़-फूंक से सर्प विष का इलाज नहीं हो सकता। असल में सत्तर प्रतिशत सर्प विषहीन होते हैं और लोग केवल सर्प के भय से ही मर जाते हैं।

मैं भी मान लेता हूँ कि उस भैंस को जिस सर्प ने काटा वह विषैला नहीं था किन्तु भैंस के शरीर में जो मोटी-मोटी गाँठें थीं वे हमारे देखते-देखते वैठ गई थीं। राजस्थान में नागपंचमी और तेजादशमी नाग देवता को प्रसन्न रखने के लिये ही मनाई जाती है।

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

अ कार

• मुमुक्षु

यह पता नहीं कि विश्व की ऐसी कौन-सी भाषा है जिसका प्रथम अक्षर 'अ' नहीं है अन्यथा अंग्रेजी याने रोमन का ए हो या अरबी उर्दू का अलिफ हो 'अ' कार को गणपति की तरह प्रथम स्थान प्राप्त है। यही अ कार जब दीर्घ होता है तो 'आकार' हो जाता है। आकार का अर्थ हम समझते हैं। 'अ' में जो अव्यक्तता थी वह 'आ' में पूरी तरह अभिव्यक्त हो गई अर्थात् उसमें त्रिआयामी सौष्ठव आ गया है। हमारी दार्शनिक अवधारणा कि आकार अव्यक्त है, सूक्ष्म है, ब्रह्म का प्रतीक है और उसी से यह संसार का विस्तार प्रकट होता है, भाषा के इस विकास व विन्यास से प्रकट होता है। यही अन्तः साक्ष्य है हमारे चेतनावादी प्रज्ञान का। ब्रह्म स्थाणु होकर भी, गुणातीत रह कर भी इस संसार का कारण बनता है, इस तथ्य का प्रमाणीकरण इससे हो जाता है कि अकार के बिना आकार की सत्ता नहीं दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 'अ' में बृंहणशीलता है, वही अपने रूप विस्तार का कारक बनता है। इस भाषागत तथ्य को दार्शनिक चेतना कहती है कि उस मायावी में ही माया प्रकट होती है, उस शव में ही शक्ति का प्रकटीकरण होता है किंवा यह कह सकते हैं अ से ही आ बनता है, आ की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

संस्कृत का भाषा शास्त्र अकार को वर्णादय मानता है, वेद के मूल प्रणव अ, उ, म् में भी अकार अपना स्थान सुरक्षित रखे हुए है। संस्कृत में 'मैं' के लिए 'अहम्' बनता है हम दो के लिए 'आवाम्' और हम सब के लिये 'वयम्'। इन रूपों की रचना प्रक्रिया को रहस्यान्वेषी दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि मैं (एक वचन) के अहम् का ह कार आवाम् (हम दोनों) के रूप में व कार बन गया है तथा प्रारंभ का आकार आकार हो गया है अर्थात् विकास के लिए प्रकृति की सत्ता व्यक्त हो जाती है और वह क्रियाशीलता के कारण प्रमुख व प्राथमिक स्थान प्राप्त कर लेती है वही जब और विस्तारित होती है तो अकार अपनी स्वतन्त्रता को व्यंजन में समाहित कर देता है और आवाम् का व कार (हम दोनों) बहु वचन

'वयम्' में प्रथम स्थान ग्रहण कर लेता है। अहम् में मूल आकार और हकार का सामान्य संकेत होता है सम्पूर्ण विश्व। समूचे विस्तार को हम दो ही अक्षरों से अर्थात् आद्यक्षर अकार और वर्णमाला के अन्तिम अक्षर टकार से संकेतित करते हैं। वेदान्त का सोहम् ब्रह्मास्मि का अभिधागत अर्थ होता है—वह मैं ब्रह्म हूँ। सम्प्रति हम वह का विवेचन छोड़ देते हैं अहम् ब्रह्मास्मि को ही लेते हैं जिसका सीधा अर्थ होता है ब्रह्म (विस्तार) अकार से हकार पर्यन्त है। इसमें प्रयुक्त 'म्' एक तकनीकी संकेत है जिसे हम बीज विस्तार की प्रक्रिया में पुरुष किंवा चेतन सत्ता का बोधक मान लेते हैं।

अ कार अभाव का अव्यक्त का सूचक है। अभाव दो तरह का होता है—सद्भाव से पहले का और सद्भाव के बाद का। जैसे यह घड़ा नहीं है। इस वाक्य में घड़े का आत्यन्तिक अभाव नहीं है क्योंकि 'यह' शब्द सत्ता सूचक भी है और वर्तमानकालिक भी। इसी कारण इस वाक्य में हम इतर सम्भावनाओं को खोजते हैं जैसे—यह पदार्थ—घड़ा नहीं है फिर भी इसमें घड़े से कुछ न कुछ साम्य अवश्य है। ऐसा ही एक दूसरा वाक्य देखें—"यहाँ घड़ा नहीं है।" यहाँ भी हम घड़े के असद्भाव या न होने की बात कह रहे हैं किन्तु घड़े की सत्ता से अस्वीकार नहीं करते और न ही यह कहना चाहते कि यहाँ कभी घड़ा था ही नहीं। ये ध्वनियाँ प्रसंगवश प्रकट होती हैं।

आशय यह कि हमारा व्यवहार एक स्टैण्डर्ड या मध्यमान पर चलता है। उससे पहले या बाद में जो स्थिति बनती है वह अभाव की ही रहती है। जैसे इस घर में कोई व्यक्ति रहा ही नहीं, यह भी अभाव है और रह कर चला गया यह भी अभाव की ही स्थिति है किन्तु दोनों में अन्तर पड़ जाता है। भाषा में इस अभाव को 'न' कार से प्रकट किया जाता है अर्थात् निषेध से व्यक्त किया जाता है किन्तु व्याकरण के नियम के अनुसार न को अ हो जाता है। जैसे न सत्य=असत्य। यह न या इसका स्थानिक अ सम्पूर्ण रूप से या सार्वत्रिक भाव से यह अर्थ प्रकट नहीं करता जैसे असत्य और अमूल्य इन दोनों ही शब्दों में निषेध है एक में सत्य का और दूसरे में मूल्य का किन्तु अमूल्य का निषेध आत्यन्तिक निषेध है

अर्थात् उसमें मूल्य की कोई स्थिति बनती ही नहीं किन्तु असत्य में सत्य के अभाव का आख्यान होता है। असत्य भी सत्तात्मक अवस्था है, उसमें स्थिति हीनता अथवा अत्यन्तिक अभाव की बात नहीं बनती। मूल्य के मध्यमान से नीचे आने की स्थिति को हम निर्मूल्य शब्द से कहते हैं। ऐसे ही एक अन्य उदाहरण है—अजर-और निर्जर। ये दोनों ही शब्द देवताओं के पर्याय हैं। इनमें सूक्ष्म अन्तर यही है कि अजर शब्द जरा के प्रवेश या संभावना की भी स्थिति नहीं बतलाता जब कि निर्जर शब्द जरा की सम्भावना से मुक्त होने की सूचना देता है। अमूल्य वस्तु में मूल्य जैसा मध्यममान कहीं आ ही नहीं सकता और निर्मूल्य में मूल्य के स्तर को पार करके निम्न की ओर निकल जाने की स्थिति बनती है।। अव्यक्त का अकार इन दोनों ही स्थितियों को व्यक्त करता है किन्तु एक जगह वह न के स्थान पर अ का रूप धारण करके और एक जगह न के स्थान पर 'निर्' उपसर्ग बन कर। स्वयं अव्यक्त शब्द में स्थित 'अ' उस 'पर' के व्यक्त होने से पहले की स्थिति को सूचित करता है।

ब्रह्मवादी निषेध को अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनका ब्रह्म पर सत्ता है, वाचामगोचर है इसलिए वे अभाव से ही भाव को नापते हैं। यह निश्चित है कि अभाव कोई सत्ता या सद्भाव नहीं होता फिर भी यदि हम किसी बात को अभाव से कहते हैं तो इसका अर्थ होता है कि उस भाव में, उस स्थिति में अधिक बल था। असत्य कहने में भी सत्य का वर्चस्व प्रकट होता है। अभाव की सत्ता प्रकट करने के लिए हमें विधेयात्मक अथवा स्वीकारात्मक स्थिति को ढूंढना पड़ता है जैसे असत्य अपने आपमें—शब्द के आधार पर अभाव है—सत्य का किन्तु वह क्या है इसे विधेयात्मक दृष्टि से मिथ्या कहा जाएगा। आश्चर्य है कि भाषा-व्यवहार में हम 'सत्य' और 'असत्य' का निर्बाध प्रयोग करते हैं किन्तु मिथ्या के समानान्तर अमिथ्या का नहीं करते। कारण स्पष्ट है कि सत्य अधिक व्यापक है।

अब जरा अहम्, आवाम्, वयम् (ये संस्कृत में अस्मद् शब्द के रूप हैं जो मैं, हम दोनों, हम सब के लिये प्रयुक्त होते हैं) की रचना का तकनीकी विश्लेषण कर लें, अहम् में अन्त में मकार पुरुष या चेतन का

प्रतीक है, अकार अव्यक्त का और हकार आकाश तत्त्व का अर्थात् वह ब्रह्म अथवा शिव संकल्पात्मक स्वरूप ग्रहण कर रहा है या करने वाला है, उसमें शक्ति का विक्षोभ होने वाला है, उसे विस्तारित होने के लिये अवकाश चाहिए, यह अवकाश ही आकाश है। अहम् ऐसे ही एकत्व किन्तु विकासाकांक्षी स्वरूप है। आवाम् में वह विकास के लिये क्रियामय हो चुकता है इसलिये 'आ' के रूप में शक्ति प्रकटतः और प्रथमतः अवस्थित है। व जल वीज होने के साथ साथ गुणों की मिश्र प्रकृति का प्रतीक है और अन्त में प्रयुक्त हलन्त मकार चेतन का सूचक है। जल की मिश्र-गुणता शिव और शक्ति के, ब्रह्म और माया के परस्पराभिमुख होने तथा उसमें शक्ति के प्राधान्य का द्योतक है। यही मैं जब और अधिक विस्तृत होकर हम सब का रूप धारण कर लेता है तो भिश्रण प्रमुख हो जाता है और यकार जो वायु बीज है, तथा रजोगुण का प्रतीक है वह प्रेरक के रूप में उसके साथ जुड़ा हुआ है और मकार के रूप में चेतन उन सबको प्राणित कर रहा है।

सारांश के रूप में हम पर के अथवा अव्यक्त के व्यक्त होने की प्रक्रिया का एकांश इस तरह निर्धारित कर सकते हैं कि सूक्ष्म में एक विक्षोभ होने वाला है, ब्रह्म में अब विस्तार की कामना उदित होने वाली है और वह विस्तार आकाश सापेक्ष भी है और आकाश पर्यन्त भी+यही 'अहम्' है। आवाम् में वह संकल्प प्रकट हो गया है, पर में अपर शक्ति अभिव्यक्त हो गई है और दोनों विस्तार के लिये क्रियामय हो गये हैं। शक्ति के चाञ्चल्य से गुणों में आलोडन हो रहा है, एक अब युगल होकर लीला—विलासपरायण हो गया है। वयम् में क्रिया का प्रवाह चल निकला है, वायु की तरह सतत प्रवहणशील और रजोगुण की तरह सृजनशील।

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है, शेष आगे कभी□

(पृष्ठ ५८ का शेष)

मारने वाले हत्यारे कहलाते हैं।

बदकिस्मती से हम किसी ऐसी लत की गिरफ्त में हैं जिससे हमारा पैसा बेकार खर्च होता है, हमारा शरीर बिगड़ रहा होता है, हमारा दिमाग भोंथरा होता जा रहा है और जो एकदम गैर जरूरी है तो उसे हम एक विपत्ति की तरह समझें और उससे छूटने के लिये मन को मजबूत करें।

हम कितनी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं ?

• शब्दश्रवा

हिन्दी हमारी मातृभाषा है। आंशिक रूप से राजभाषा भी। अनेकों प्रान्तों की अगणित विभाषाओं की प्राणदायिनी हिन्दी विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र की पहचान है। विभाषाओं का यह परिवार हिन्दी की अनौपचारिक श्री वृद्धि करता है किन्तु इसके साथ ही लोकबल का अमर्यादित व्यवहार इसे अनियन्त्रित करता है। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह मर्यादा रहितता ही लज्जा हीनता कहलाती है, प्रवाह के नाम पर निरंकुश और निर्मर्याद भाषा ही विहीन रहती है, उसमें वह अभिजात शालीनता नहीं रहती और भारत के संस्कारों के लिये यह गतिशीलता बाजारुपन है। सामन्तशाही आज एक घृणित परिप्रेक्ष्य है किन्तु उसे गर्हित बनाने वाले शोषण से यदि मुक्त हुआ जा सके तो सामन्त शब्द एक उदात्त-रुचिसंपन्न और कलात्मकता का समेकित रूपांकन करता है। जयपुर में आयोजित लेखकों की गोष्ठी का उद्‌घाटन करते हुए स्व० सम्पूर्णानन्द जी ने ऐसे ही आग्रह और संस्कारों से प्रेरित होकर कहा था कि हिन्दी का साहित्यिक स्वरूप सामयिक प्रवादों से विरूपित नहीं किया जाना चाहिए। उसे सरलीकरण की नहीं संस्कारशीलता की आवश्यकता है और उसके शोभन रूप को किसी भी स्थिति में विकृत नहीं होने दिया जाय—यह आज की आवश्यकता है और इससे हिन्दी का हित साधन होगा।

प्रादेशिक या जनपद स्तर पर हम विभाषा या बोली के रूप में कैसा भी वाग्व्यवहार करें किन्तु लिखते समय उसके साहित्यिक विन्यास और शब्दों के संगत स्वरूप के प्रति संवेदनशील बने रहें—यह आवश्यक है।

मुझे याद है जब हरिऔध जी ने हिन्दी याने तत्सम शब्दों को उर्दू शैली के प्रकृति-प्रत्ययों से शासित करने और उर्दू शब्दों पर संस्कृत व्याकरण की शाण लगाने का प्रयोग किया तो तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। "हरिऔध का बुढभस" शीर्षक से एक बहुत तीखा लेख छपा था। किसी अन्य भाषा के शब्दों पर दूसरी भाषा के व्याकरण का अनुशासन अव्याव-

हारिक अतएव अटपटा—अशोभन रहता है। जैसे अंग्रेजी के पुट और वट एक ही 'यू' स्वर से लिखे जाने पर भी भिन्न ध्वनि देते हैं इसका यही कारण है कि ये मूल रूप में संस्कृत के हैं और इनको रोमन लिपि की अपूर्ण अभिव्यंजना की विवशता के कारण एक ही स्वर से लिखना पड़ा। हिन्दी सम्पूर्ण भाषा है इसलिये इसका व्याकरण है। अंग्रेजी जैसी विवशता इसमें नहीं हैं इसलिये इसके शुद्ध संस्कारित रूप को ही साहित्य में प्रतिष्ठित करना चाहिए।

हिन्दी में ये अशुद्धियाँ अनेक कारणों से होती हैं और अनेक अशुद्धियाँ तो इतनी रच-पच गई हैं कि उनका शुद्ध रूप ही अशुद्ध-सा लगने लगता है—

उदाहरण के लिये विश्राम, पाठक और सत्यमेव जयते हैं। विश्राम श्रम धातु के वि उपसर्ग लगाने से बनता है। जब मूल धातु श्रम है तो उपसर्ग लगाने से वह दीर्घ क्यों हो गया? श्रम और परिश्रम जैसे शब्दों में हम दीर्घ नहीं करते किन्तु वि उपसर्ग लगते ही उसे विश्राम कर देते हैं, संभव है श्रान्ति, विश्रान्ति के अनुकरण पर इसे विश्राम कर दिया गया हो अन्यथा शुद्ध शब्द तो विश्रम ही है।

ऐसी ही असंगति पाठक शब्द के साथ है। पाठक शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो शुद्ध है (विश्राम की तरह मूल रूप में ही अशुद्ध नहीं है) किन्तु पाठक को पढ़ने वाले के अर्थ में हम प्रयोग करते हैं—यही अशुद्धि है क्योंकि पाठक शब्द का अर्थ होगा पढ़ाने वाला। इस शब्द का मूल पठ धातु है जिसमें प्रेरणार्थक (दूसरे के द्वारा कराये जाने) प्रयोग में पठ का पाठ हो जाता है तब पाठक बनता है शुद्ध शब्द पढ़ने वाले के अर्थ में पठक ही होना चाहिए।

तीसरा उदाहरण है हमारा राष्ट्रीय वाक्य – सत्यमेव जयते। स्पष्ट रूप में यह संस्कृत वाक्य है और संस्कृत में जयते अशुद्ध है। जी, जये अर्थात जीतने के अर्थ में जी धातु परस्मैपदी होता है जिसका रूप जयति होता है। इसको जयते करना चाहें तो पहले वि उपसर्ग लगाना होगा। वि लगाने पर विजयते शुद्ध हो जाएगा इसलिये इसका शुद्ध रूप होगा 'सत्यमेव जयति' या 'सत्यमेव विजयते'। इस अशुद्धि पर जवाहर लाल जी

के जमाने में ही चर्चा हुई थी पर उस समय उन्होंने यह कहकर टाल दिया था कि इस पर वहुत खर्च आयेगा। खर्च के भय से ऐसे महत्त्वपूर्ण वाक्य को अशुद्ध लिखने की परम्परा चल पड़ी किन्तु उस समय से ही नये डिजाइनों में यदि शुद्ध रूप का व्यवहार प्रारंभ हो जाता तो आज तक सर्वत्र शुद्ध हो जाता पर इसके प्रति इतना सावचेत है कौन?

उच्चारण में सुकरता के कारण अनेक ऐसे शब्द बन जाते हैं जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध होते है। मेरा अपना विचार है कि ऐसी सुकरता के लिये यथेच्छ शरण लगाने में मारवाडी सबसे ज्यादा निरंकुश है। कथा को खता, गधा को घदा, पढ़ने को फडने वोलने में उनको कोई संकोच नहीं होता। ग्रामीण तो दूर पठित लोग भी ऐसे असिद्ध रूप से वोला करते हैं। रेल्वे के सिग्नल को सिंगल, आर्डर को आडर, इलेक्ट्रीसीटी को इलैक्ट्रिक, टी० टी० ई० को टी० टी०, डब्लू० ओ० टी० को डब्लू० टी० कहना साधारण वात है। माना ये विदेशी भाषा के शब्द हैं पर शुद्ध वोलना तो हर भाषा का नैतिक तकाजा है।

हिन्दी में भी पुण्य को पुन्य कृष्ण को कृस्न, संस्कृत को सन्स्कृत वोलना इतना प्रचलित हो गया है कि वहु पठित जन भी इस ओर ध्यान नहीं दे पाते। शनिच्चर को शनीचर वा सनीसर, वुधवार बुद्धवार और बृहस्पतिवार ब्रहस्पत या बिस्पतवार कहना अधिक प्रचलित है। सकार के तीन रूपों में 'ष' और 'श' का उच्चारण वहुत कम लोग करते हैं अन्यथा दन्त्य स ही सार्वत्रिक बन गया है।

लोगों की इस उच्छृंखलता को देखकर ही किसी सुधी ने कहा था—

यदयपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्तजनः श्वजनो मा भूत् सकलं, शकलं, सकृत शकृत्॥

अर्थात् हे पुत्र! अधिक नहीं पढता है तो भी व्याकरण पढ ले जिससे स्वजन-श्वजन, सकल-शकल और सस्कृत् शकृत् न हो जाय। इस किंचित् असावधानी से कितना अर्थ विकार हो जायगा यह सोचने की वात है क्योंकि स्वजन का अर्थ होता है अपने लोग और श्वजन का अर्थ कुत्ते, सकल याने सम्पूर्ण और शकल याने टुकड़ा और सकृत् याने एक वार तथा शकृत् याने विष्ठा होता है।

ऋकार को रकार और रकार को ऋकार बनाकर बोलने में भी कोई ध्यान नहीं रखा जाता जैसे ब्रजमोहन को वृजमोहन बोलना अधिक प्रचलित है, इसी सुविधा को और विस्तारित करने के लिये वृज मोहन भी बोला करते हैं।

संधि के विषय में पूर्ण ज्ञान न होने से भी कई अशुद्ध शब्द व्यवहार में आ रहे हैं जैसे शरदोत्सव तुषारापात और मूसलाधार। यथार्थ में शरदोत्सव में शरद् और उत्सव दो शब्द हैं इनमें शरद् का द कार स्वर-हीन (हल्) होने से उत्सव के 'उ' में सीधा मिल जाता है और शरदुत्सव शब्द बनाता है। ऐसे ही शरदंक बनता है शरदांक नहीं तुषारापात का। अर्थ करते हैं बर्फ गिरना जब कि तुषारापात और आपात शब्द रहेंगे अन्यथा बर्फ=तुषार, गिरना=पात के लिये तुषारपात ही शुद्ध रहता है। यही स्थिति मूसलाधार की है। मूसलाधार का अर्थ करते हैं मूसल जैसी धारा जबकि इस शब्द का अर्थ होता है मूसल का आधार। शुद्ध शब्द मूसलधार ही होगा।

अंग्रेजी का मक्षिकास्थाने अनुसरण करने की प्रवृत्ति से भी अनेक विचित्र और अशुद्ध प्रयोग बन गये हैं। सरकारी पत्राचार में किसी भी प्रार्थना पत्र के प्रारंभ में 'सेवा में' लिखने की एक सामान्य परम्परा बन गई है। इस 'सेवा में' शब्द की आगे कोई संगति नहीं बैठती, भावनात्मक स्तर पर यह सम्मान प्रकट भले ही कर लेता हो। यह क्यों लिखा जाता है? क्योंकि अंग्रेजी में 'टू' लिखा जाता है इसलिए उसका स्थानिक बनाकर इसे चिपकाने की परम्परा चल पड़ी है अन्यथा अंग्रजी का 'टू' तो आगे जुड़ जाता है और यह सेवा में कहीं नहीं जुड़ता यदि सेवा में लिखने का इतना ही मोह है तो श्रीमान् जिलाधीश महोदय की सेवा में लिखना चाहिए— सेवा में, श्रीमान् जिलाधीश महोदय नहीं।

ऐसी ही असंगति अंग्रेजी का आफ् करता है। अधिकांश कार्यालयों के नामपट एवं उनकी रबर मुहरों तथा मुद्रित शीर्षकों पर लिखा रहता है—कार्यालय प्रमुख अधीक्षक इन शब्दों का विन्यास आफिस् आफ् द चीफ् सुपरवाइजर का हिन्दी शब्दावली में किया गया है। मजे की या मजाक की बात यह कि आफ् का प्रयोग नहीं किया। इस प्रयोग के पीछे एक

मानसिकता रही है। मानसिकता यह कि आफ् के अनुसार हिन्दी करते हैं तो प्रमुख अधीक्षक का कार्यालय लिखना पड़ता है और ऐसा लिखने पर जोर नहीं पड़ता जबकि अंग्रेजी में लिखने पर आफ़िस शब्द पहले आ जाता है। इन पदों में आफ को समासगत मानने पर अर्थ होगा कार्यालय का प्रमुख अधीक्षक।

इस प्रकार के मोह से ग्रस्त होकर हम किसी भाषा के मौलिक विन्यास को ही नष्ट कर देना चाहते हैं तो यह उस भाषा के साथ अति-चार है। आफ् के प्रयोग ने सर्वाधिक भौंडे प्रयोग किये हैं जैसे कहानी एक गाँव की या युद्ध दो मित्रों का इससे भी अधिक उपहासास्पद दूसरे वाक्य मिल जायेंगे। होता यह है कि हिन्दी में कारकों के चिह्न हम बाद में लगाते हैं और अंग्रेजी में पहले। अब अग्रेजी शैली के अनुसार हम इस विन्यास को बदलने लगें तो हिन्दी का मूल रूप विकृत हो जाता है। ऐसे ही मोह का एक उदाहरण देखिये—

सार्वजनिक निर्माण विभाग ने सड़क के किनारे एक तख्ती लगा रखी थी—'सड़क मरम्मत में हैं' सीधे-सीधे यह वाक्य अंग्रेजी के रोड इज् अण्डर रिपेयर का हिन्दी अनुवाद है किन्तु हिन्दी की तरह न होने से भौंडा भी लगता है और अर्थ भी कुछ इस तरह बताता है—शब्दों के अनुसार अर्थ होगा—सड़क मरम्मत नामक स्थान में है। इसे सरल अर्थ प्रतिपादक करने के लिये 'सड़क पर मरम्मत हो रही है' ऐसे लिखना चाहिए था। ऐसे ही एक पट्टी पर लिखा था—'कार्य प्रगति पर है'।

अब हम कतिपय वे उदाहरण लेते हैं जो हिन्दी में ही हमारे दुराग्रहों के कारण होने लगे हैं। जैसे—उपरोक्त। उपरोक्त शब्द अशुद्ध है क्योंकि उपर और उक्त को जोड़कर यह बन सकता है। उपर कोई शब्द नहीं है। उर्दू में ऊपर होता है और संस्कृत में उपरि। यदि उर्दू का ऊपर और संस्कृत का उक्त जोड़ कर हम बोलना चाहें तो उपरोक्त बनता है और संस्कृत के उपरि एवं उक्त को संधि करके बोलेंगे तो 'उपर्युक्त' बनेगा।

कई बार हम भावार्थक प्रत्यय को दो बार लगा देते हैं जैसे पूज्यनीय या पाण्डित्यता ये शब्द व्याकरण की दृष्टि से न सही प्रयोग की दृष्टि से असिद्ध हैं क्योंकि भाव का भाव क्या होगा ? शुद्ध होगा—पूज्य या पूजनीय

पाण्डित्य या पण्डितता।

पूज्य के साथ ही एक शब्द और याद आ रहा है—पुजारी—यह शब्द उर्दू ने गढ़ा है, इसके सिद्ध करने का क्या नियम उन उर्दू व्याकरणकारों ने बनाया—यह मैं नहीं जानता पर मोटे तौर पर इस शब्द से लगता है जैसे पूजा का अरि (शत्रु) पूजा के बड़े 'ऊ' को छोटा करने में उर्दू को कोई संकोच नहीं है। बड़ा-छोटा करना उनका अपना सार्वभौम अधिकार ही है जैसे 'नहीं' में ही में बड़ी मात्रा उर्दू वालों का अपना लहजा है वर्ना संस्कृत में 'नहि' शब्द शुद्ध रहता है।

माना, लोकाचार में बहुत बल होता है और उसके बल पर अनेक शब्द अपने अर्थ को छोड़ कर किसी अन्य अर्थ के सूचक बन जाते हैं। ऐसा अनेक शब्दों के साथ हुआ है जिस पर हम अन्यत्र विचार करेंगे। यहाँ मैं केवल प्रेम शब्द का उदाहरण दे रहा हूँ। इस शब्द ने युगानुसार कितने अर्थान्तरण किये हैं—यह देखिये—प्रारंभ में प्रेम शब्द प्रसन्नता के लिये प्रयुक्त होता था। अमरकोश प्रेम शब्द के लिये कहता है—'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः' अर्थात् मुत्, प्रमोद, हर्ष ये प्रेम के पर्याय हैं। प्राचीन ग्रन्थों में प्रेमा शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग मिलता है किन्तु यही शब्द जब हिन्दी में आया तो अनुराग का सूचक बना, वह भी समवया या समान स्तर के लोगों के बीच का रागात्मक सम्बन्ध। आगे चलकर यह प्रेम इतना जुगुप्सित हो गया कि रतिक्रीडा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। सड़क छाप साहित्य ने इस अनुरंजन की यह दुर्गति कर डाली।

इस अशुद्धता के उन्माद ने सब से अधिक विकृत किया है अनुस्वार को। अनुस्वार लिखने में सुगम है किन्तु उसके निरंकुश प्रयोग से उच्चारण भी प्रभावित होता है और अशुद्धता को प्रोत्साहन मिलता है। शायद ही कोई ऐसी पत्रिका हो जो इस ओर ध्यान देती हो अन्यथा इस विषय में उदासीन ही रहती हैं। एक सामान्य उदाहरण है—'आइये, हंस लें' या अब 'हंसने की बारी है'। ऐसे शीर्षक आपने भी देखे होंगे। इस हंस लें को यदि अनुस्वार के अनुसार बोलें तो अर्थ होगा आइये हंस (पक्षी) लें अर्थात् और पक्षी तो ले चुके अब हंस लें। उर्दू के अनुसार इस चन्द्रबिन्दु लगनी चाहिए। 'हँस लें' लिखा जाना चाहिए किन्तु चन्द्रबिन्दु लगा कर लिखना

अरुचिकर है इसलिये हंस लें लिख देते हैं। संस्कृत के आधार पर इसको केवल 'हस लें' लिखा जायगा क्योंकि यह हस धातु है। आश्चर्य तब हुआ जब कतिपय पंजाबवासियों को हंस लें ही बोलते हुए सुना।

संस्कृत व्याकरण के अनुस्वार केवल मकार को ही किया जाता है जैसे संहार, अहंकार किन्तु यहाँ तो अंक, प्रत्यंचा, कंठ, संतान, संबंध, आदि में भी अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाता है। नियम यह कहता है कि अनुस्वार भी अपने से आगे वाले अक्षर के वर्ग का अन्तिम अनुनासिक हो जाता है जिससे गंगा, अंक, प्रत्यंचा, कण्ठ, सन्तान और सम्बन्ध बनते हैं। इनमें क्रमशः ग, क, च, ठ, त, प और ध हैं जो क वर्ग, क वर्ग, ग वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग और त वर्ग के हैं जिनका अन्तिम अक्षर कर दिया गया है। हाँ, य, र, ल व, श, ह के आगे रहने पर अनुस्वार होगा जैसे संयम, रिरंसा, संलाप, स्वयंवर, संशय, सिंह।

अनुस्वार के इस अज्ञान ने ही सिन्हा को प्रकट किया है। बिहार और बंगाल में कायस्थों के एक उपगोत्र में सिन्हा आते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि कायस्थ राज्याधिकार में मुंशीगीरी की कला में निपुण होते हैं अंग्रेजों के राज्यकाल में सिंह उपनामा या गोत्रीय ये लोग सिंघा हुए क्योंकि सिंह का उच्चारण अंग्रेजी की स्थूल जिह्वा के लिये कष्टप्रद था और अन्त में दीर्घ स्वर भी उच्चारण की सुविधा के लिये किया गया जैसे राम को रामा, शुक्ल को शुक्ला, गुप्त को गुप्ता, मिश्र को मिश्रा। सिंघा सुनने में जब उपयुक्त नहीं लगा तो सिन्हा पर समझौता हुआ। यदि हम शुद्धता का विचार करें तो सिन्हा साहब को सिंह साहब कहना ठीक रहेगा □ (क्रमशः)

सर्प एक ऐसा जीव है जो जल में और स्थल में याने सब जगह मिलता है। हमारे यहाँ के रेत के टीलों में पीवण सर्प बहुत विषैला माना जाता है। वह रात में सोये व्यक्ति के श्वास में श्वासमिलाकर अपना जहरीला श्वास उसमें छोड़ता रहता है और उसका खुद पीता रहता है। किसी मालूम ही नहीं पड़ता क्योंकि यह काटता-फुफकारता नहीं और अगले दिन सुबह जैसे-जैसे सूर्य चढ़ता जायेगा उसका विष फैलता चला जायेगा फिर उसका कोई इलाज नहीं। सुनते हैं कि सूरज उगने से पहले अगर मालूम हो जाय तो उसके इलाज करने वाले विरले लोग भी हैं।

कसौटी

(इस स्तम्भ हेतु समीक्षार्थ पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका की दो प्रतियां भेजना आवश्यक है।)

नाट्यकला का एक अनूठा दस्तावेज

कृति : भारतीय नाट्य सौन्दर्य / लेखक : डॉ० मनोहर काले / प्रकाशक : मेघ प्रकाशन, एक्स ६/३८ ब्रह्मपुरी, दिल्ली-११००५३ / मूल्य : ५० रुपये

पुरातन भारतीय मनीषा ने विश्व के सांस्कृतिक वैभव की समृद्धि के लिए जिन ललित कलाओं का आविष्कार किया था उनमें 'नाट्य कला' का स्थान मूर्धन्य है। अनेक शताब्दियों तक 'भारतीय नाट्य शास्त्र' नाट्य-कला, नृत्य, संगीत तथा नाटकों के विकास के लिये प्रकाश स्तम्भ बना रहा। इसमें विशेषतः रंगमंच, अभिनय कला, अभिनेय नाटकों की संरचना-तकनीक तथा नाट्यास्वादकों की विविध मनःस्थितियों का सूक्ष्म किन्तु व्यावहारिक चिन्तन-विश्लेषण उपलब्ध होता है। यह शास्त्र न केवल अभिनेताओं के लिये ही अभिनय तंत्र की सूक्ष्म जानकारी देता है वरन् नाटककारों के लिए भी मंचन-सापेक्ष नाटक रचना की प्रविधि के आधारभूत चिन्तन के सूत्र प्रस्तुत करता है। संक्षेप में नाट्य-शास्त्र ने अभिनेताओं तथा नाटककारों के लिए मानव जीवन सापेक्ष कला-सृजन की अनन्त संभावनाओं की अभिव्यंजना की है। किन्तु इस देश में प्रादुर्भूत विभिन्न धर्म संप्रदायों की दार्शनिक अवधारणाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में भी इस लोक जीवन सापेक्ष कला की मीमांसा आरंभ हुई। परिणामतः नाट्य-कला का मूलभूत, सजीव और सहज सौन्दर्य प्रच्छन्न हो गया। दार्शनिकों की रहस्य-गंभीर दृष्टियों ने अनेक शताब्दियों तक इस पर सघन आवरण डाल दिया जिससे यह कला अतिरेकी अलौकिकत्व का स्वरूप धारण कर बैठी। इस ग्रंथ में लेखक ने अपने गवेषणात्मक अध्ययन द्वारा उपर्युक्त अनैसर्गिक आच्छादन को अनावृत किया है। फलस्वरूप नाट्यकला के वास्तविक सौन्दर्य की झलक सहज ही उपलब्ध होने लगती है।

नाट्य शास्त्र का निम्नांकित दो दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्व रहा है :

१. इसमें जाति-वर्ण-संप्रदायगत संकीर्ण भावना का त्याग करके संपूर्ण-भारत के सर्वसामान्य समाज-जीवन को तथा लोक स्वभाव को नाट्य-

कला का उपजीव्य वनाया गया है।

२. लोक-धर्म तथा नाट्य-धर्म में संतुलन और सामजस्य स्थापित करते हुए नाट्य कला के सर्वोत्कृष्ट मानक को प्रतिष्ठापित किया गया है। परिणामतः नाट्यकलागत सौन्दर्य-सृजन के चिरंतन प्रतिमान की मर्मस्पर्शी झांकी इस ग्रंथ में मिल जाती है।

किसी भी कला का 'संरचना', उसका 'आस्वादन' तथा 'मूल्यांकन' ये तीनों प्रविधियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इनका निजी स्वरूप पृथक्-पृथक् होता है। इस तथ्य पर नाट्यकला के मर्मज्ञ मनीषियों ने वल देकर अत्याधुनिक कला-समीक्षकों के लिए भी नितांत स्वस्थ मार्गदर्शन किया है। उपर्युक्त तीनों प्रविधियों के लिये उपेक्षित तत्वों तथा उनमें अन्तर्हित स्वतन्त्र गुणों की व्यापक समीक्षा इस ग्रंथ में की गयी है। इससे लेखक की गंभीर शोधपरक दृष्टि तथा अभिन्न चिन्तन की प्रक्रिया का सहज परिचय प्राप्त होता है। इस विश्लेषण से नाट्यकला के निर्माता तथा मूल्यांकनकर्त्ता दोनों ही समानरूप से लाभान्वित हो सकते हैं।

नाट्यकला से सम्वद्ध अन्य अनेक कलाएँ है। उदाहरणार्थ वास्तु, काव्य, संगीत, चित्र, नृत्य, वाद्य आदि किन्तु ये सव कलाएँ 'नाट्य-कला' को संपूर्णता के उच्च शिखर पर पहुँचाने की दृष्टि से ही नाट्य शास्त्र में विवेचित हुई हैं। परिणामतः भारत के किसी भी कोने में पल्लवित उपर्युक्त प्राचीन कलाओं के आरंभिक स्वरूप के अध्ययन के लिए नाट्य शास्त्र आधारभूत संदर्भ ग्रंथ सिद्ध होता है। विशेषतः भारतीय काव्य शास्त्र के अनेक तत्त्वों का उद्गमस्थल तो नाट्य शास्त्र ही रहा है। आरंभिक अलंकारवादी काव्यशास्त्रज्ञ तो नाट्य सौन्दर्य से इतने अधिक अभिभूत हो चुके थे कि उन्हें अनेक नाट्य तत्वों को काव्य सौन्दर्य के भी संवर्द्धक प्रतिमान निर्धारित करने का मोह जाग्रत हुआ। परिणामतः इन्होंने नाट्य के ही रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव, सात्विक भाव-रस निष्पत्ति आदि की मीमांसा नाट्येतर संदर्भ में बड़े मनोयोग से अनेक शताब्दियों तक प्रवर्तित की किन्तु 'काव्य' तथा 'नाट्य' की संरचना की आधारभूत भूमि भिन्न-भिन्न होती है एक विशिष्ट कला के संरचनानिष्ठ तत्व अन्य कला की संरचना में अवतरित होकर अपना मौलिक स्वरूप

रूपान्तरित कर लेते हैं। उनमें रूपात्मक ही नहीं वरन् गुणात्मक परिवर्तन भी उपस्थित हो जाता है—इस मार्मिक तथ्य का गंभीर आंतरिक शोध 'भारतीय नाट्य सौन्दर्य' में किया गया है। इससे नाट्य शास्त्र के साथ-साथ काव्य शास्त्र के चिन्तन क्षेत्र में भी नये आयाम उद्‌घाटित हुए हैं।

भारतीय नाट्याचार्यों का दृष्टिकोण वहुत विशाल था। उन्होंने सम्पूर्ण भारत की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ के निवासियों की विविधता को अपनी चिंतन दृष्टि का आधार वनाया था। देव-दानव तथा मानव के शुभाशुभ कर्मों को नाट्यकला की परिधि में अन्तर्भूत करके इस कला की उपासना द्वारा भारतीय जनता को एकात्मकता के सूत्र में ग्रंथित करने का महान प्रयत्न किया था। नाट्य शास्त्र में वृत्ति तथा प्रवृत्ति तत्त्वों की आविष्कृति के मूल में भारतीय जन-मानस को नाट्य कला का अभिन्न अंग वनाने की धारणा बलवती रही है। इस प्रकार नाट्य-कला के विभिन्न तत्त्वों की आंतरिक मीमांसा करके इस ग्रंथ में नाट्य सौन्दर्य के चिरंतन प्रतिमान को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है। जिसका महत्त्व अद्यतन युग में भी असंदिग्ध है।

समीक्षक : डॉ० दामोदर शास्त्री, १४०-वी, कटवरियाँ सराय, नई दिल्ली-११००१६

व्यंग्य-साहित्य में नया प्रयोग

☐ **कृति : मेमसाब का दस्ताना / लेखक : शरदेन्दु / प्रकाशक : सुमति साहित्य सदन, ९४४, नई वस्ती, कूँचा पातीराम, वाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६ / मूल्य : पन्द्रह रुपये**

मेमसाव का दस्ताना एक जंगल-कथा है, वल्कि उसे जंगल-उपन्यास कहना अधिक ठीक रहेगा। उसके पात्र भी जंगल में रहने वाले सिंह, लोमड़ी, वृषभ, वानर, शूकर, भेड़िया, मेढक, खरगोश, विल्ली, चूहे, आदि ही हैं।

मुख्य कथा सिंहवन की है। इन्सानों के प्रभाव में आकर सिंहवन के पशु-पक्षी अपना सरदार चुनने में प्रजातंत्री प्रणाली अपनाने का निश्चय करते हैं। फलस्वरूप अन्य जंगलों के पशु-पंक्षी सिंह वन को प्रजा-

वन भी कहने लगते हैं। प्रजावन की सरदार एक सिंहनी ही होती है। फिर एक बार ऐसा होता है कि पाँच पशु मिलकर अपनी एक पार्टी पंच-पार्टी बना लेते हैं और सिंहनी को सरदार-पद से अपदस्थ कर स्वयं प्रजा-वन के चौधरी बन जाते हैं। वे अपनी ओर से लोमड़ को नया सरदार चुनते हैं। प्रजावन में एक नए युग का श्रीगणेश होता है जिसमें सभी पशु-पक्षी ऊपर से सहकार करते दिखाई देते हैं किन्तु अन्दर-अन्दर एक-दूसरे की जड़ें खोदते रहते हैं। विभिन्न पशु-पक्षियों का व्यवहार उनके गुण-कर्म और आज की राजनीति के युग-धर्म के अनुसार ही होता है।

प्रजावन से ही लगे हुये भेड़ियावन, तालवन और झील हैं जिनके सरदार क्रमशः भेड़िया, मछली और मगर हैं। भेड़ियावन में भेड़ों और भेड़ियों की लाँग-डाँट चलती रहती है, तालवन में मत्स्य न्याय है जहाँ हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगलने को तत्पर है और झील में मगर मामा एक किनारे पर बैठे अपने स्वभाव के अनुसार मछलियाँ तथा अन्य पशु-पक्षियों के हित चिंतन में मगरी आँसू बहाते रहते हैं। मगर मामा की भेड़िया सरदार से खूब पटती है किन्तु सिंहनी को वह अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं।

हिन्दी में यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है जो प्रस्तुति, शैली और वैचारिक दृष्टि से एकदम अनूठी है। हिन्दी में यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है जिसे बच्चे-जवान-बूढ़े सभी समान रुचि से पढ़ेंगे और अपने-अपने कोणों से पसन्द करेंगे।

'हिन्दुस्तान' दैनिक के भूतपूर्व मुख्य सम्पादक तथा सम्प्रति काँग्रेस (इंदिरा) के महामंत्री श्री चन्दूलाल चन्द्राकर का पुस्तक की भूमिका में कहना है; 'यों तो यह पुस्तक सभी के लिये रोचक है लेकिन मुझे विश्वास है कि बच्चे इसे एक बार नहीं अनेक बार पढ़ना चाहेंगे।'

कथा और भाषा दोनों इतनी सहज हैं और उनमें इतना प्रभाव है कि पाठक उनमें खो जाता है और एक बार पढ़ना प्रारम्भ कर उसे अन्त तक पढ़े बिना नहीं रह सकता। कथा में कथा इस प्रकार जुड़ती जाती है कि पंचतन्त्र की शैली का-सा आनन्द आता है। पाठक महसूस करने लगता है कि वह पुस्तक को पढ़ नहीं रहा बल्कि जी रहा है। पुस्तक के पात्र

मानव-वेश रखकर उसके चारों ओर मंडराने लगते हैं।

व्यंग्य लेखक की अपनी विशेषता है। अब तक दुर्लभ, एकदम अछूता व्यंग्य। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

तीनों गुणी वन्दर सोच-विचार के वाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह ववडंर कुछ भी नहीं है, केवल पत्रकार के मन की उपज है। सुलोचन आँखों पर हाथ रख, सुकर्ण कानों में उगली डाल और सुमुख मुँह पर हाथ रख पुनः आत्म-चिंतन में लीन हो गए।

× × ×

एक बूढ़ा भेड़ा बोला—जंगल में अब सच्चा प्रजातन्त्र आया है, आज भेड़िये भी भेड़ों की तरह अपना जुलूस निकाल रहे हैं।

× × ×

अगले दिन विल्ली समय से लोमड़ के दरवार में पहुँच गई। चूहा भी पहुँचा, लेकिन वह विल्ली के पेट में था। विल्ली ने कहा—'वेटे, हममें समझौता हो गया है। अब चूहा तुमसे मेरे वारे में कोई शिकायत करने नहीं आयेगा।'

लोमड़ हँसा। वोला—'देखा हमारे राज्य में कोई सवल पशु निर्वल पशु को नहीं सता सकता।'

× × ×

पहला समय होता तो मोर चोंच मार-मारकर कौए के सारे पंख नोच लेते और उसे अधमरा कर देते। लेकिन अब पंचवन में प्रजातन्त्र था। जानवरों के वहुमत से ही निर्णय किया जा सकता था कि कौन असली मोर है और कौन नकली मोर। मोरों के विरोध के वावजूद जानवरों ने कौए को मोर ठहराया। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे पंचवन असली मोरों से खाली हो गया। वे पंचवन को छोड़ सात समुन्दर पार किसी वन में चले गये। उनकी जगह पंचवन के अधिकांश कौए मोरपंख खोंस-खोंसकर मोर वन गये, जिस प्रकार छोटे-वड़े सभी पशु अपने नाम के साथ सिंह जोड़कर सिंह वन गए थे।

समीक्षक : सतीश वशिष्ठ, १५७८, चन्द्रावल रोड, दिल्ली-११०००७·

आयुर्वेद–परिचय

(सहज आनन्द एक वैचारिक यज्ञ है और यज्ञ एक विधा है जो व्यष्टि को सुखी और समष्टि को उल्लसित रखने का व्यावहारिक विधान है। इसका पाठक हमारी दृष्टि में इसका संरक्षक है, ग्राहक नहीं। इस दृष्टि से यह एक विस्तारशील परिवार है और परिवारजन का कष्ट सभी का होता है, उसके कष्ट से सभी को सहानुभूति होती है और सभी उसे कष्ट मुक्त करने के लिये आतुर रहते हैं।

सहज आनन्द एक समर्थ मंच है, इसकी परिधि में सभी तरह के लोग हैं और सभी विश्वसनीय हैं। उनके ज्ञान और अनुभव का लाभ पाने के लिये हम सभी जन अधिकार प्राप्त हैं। तांत्रिक परामर्श और ज्योतिषीय स्तम्भ इस मंगल कामना के उदाहरण हैं किन्तु कष्ट भौतिक और दैविक ही नहीं होते, दैहिक भी होते हैं। स्वस्थ रहना हमारी पहली आवश्यकता है। आपको स्वस्थ रखने के लिए हम 'आयुर्वेद-परिचय' का यह नियमित स्तम्भ प्रारम्भ कर रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आयुर्वेद संसार की प्राचीनतम चिकित्सा विधि है, निरापद, पूर्व और पश्चात् की किसी भी प्रतिक्रिया से रहित। आपके स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिये श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा के दीर्घ अनुभव, परम्परागत ज्ञान और चिकित्सा विधियों की समन्वित पद्धति का लाभ प्रस्तुत किया जा रहा है।

यद्यपि सहजानन्द आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण या विक्रय नहीं करता फिर भी यदि आपके लिये विश्वस्त औषधि का निर्माण करना आवश्यक हुआ और आपकी तत्परता दिखाई पड़ी तो औषधि बनवाई भी जा सकती है। इस स्तम्भ के लिये आप अपनी किसी व्याधि के विषय में लिख सकते हैं जिसकी चिकित्सा, कारण और निदान से आपको घर बैठे परिचित कराने का श्रेयस्कर कार्य यह स्तम्भ कर रहा है। —सम्पादक]

सभी प्राणधारियों में मानव शरीर रचना की दृष्टि से सर्वोत्तम है। मानव सबसे पहला प्राणी है जो सृष्टि की सभी प्रकार की वस्तुओं

का मनचाहा उपयोग कर सकता है। मगर यह आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जबकि मानव पूर्ण स्वस्थ रह सके। यदि व्यक्ति स्वस्थ नहीं है तो किसी भी वस्तु का आनन्द तो क्या ? जीवन जीने का आनन्द भी वह नहीं उठा सकेगा। अपंग बनकर जीना परम दुखदाई और भार रूप बन-कर रह जायगा। इसलिये शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहना मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक है।

स्वस्थ रहना जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत रूप से आवश्यक है वहाँ उसकी स्वस्थता पूरे परिवार और देश के लिये भी उतनी ही आवश्यक है। यदि यह कहा जाय कि जिस देश का व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से जितना सशक्त और उन्नत होगा वह देश भी उतना ही सशक्त और उन्नत होगा तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसी के साथ आर्थिक पक्ष भी जुड़ा हुआ है। जहाँ बीमार रहने से घर में जितना अधिक व्यय होगा अथवा नहीं होगा—अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय स्तर पर उसका भी असर उस देश के आर्थिक ढांचे पर पड़े विना नहीं रहेगा। अतः हमारे पूज्य ऋषियों ने इस स्वास्थ्य के विषय को अति गंभीर रूप से लिया और स्वतन्त्र रूप से एक संपूर्ण स्वास्थ्य-सम्बन्धी शास्त्र की रचना की।

शरीर और जीवात्मा के संयोग को आयु कहते हैं। आयु को स्वस्थ, स्थिर और रोग-रहित रखने के लिये आयुर्वेद का जन्म हुआ। आयुर्वेद में आयु के हितार्थ तीन बातों पर मुख्य रूप से विचार किया गया—(१) आयु के हित-अहित पर (२) रोग निदान पर और (३) रोग-शमन पर।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इसका उपदेश दक्ष-प्रजापति को किया। प्रजापति-दक्ष ने द्वय-अश्विनी कुमारों को इसका उपदेश किया। ये दोनों देव-वैद्य कहलाये। अश्विनी कुमारों से इस ज्ञान को देवराज इन्द्र ने प्राप्त किया। इन्द्र से महर्षि अत्रि, भारद्वाज आदि अनेक, ऋषि-मुनियों ने इस ज्ञान को प्राप्त कर लोक कल्याणार्थ अलग-अलग ढंग से अनेक ग्रन्थों की रचना कर डाली। इस प्रकार यह आयुर्वेद जहाँ ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट है वहीं अनेक ऋषि-मुनियों द्वारा समय-समय पर प्रत्यक्ष और प्रायोगिक रूप से कसौटी पर कसा हुआ है। दयालु ऋषियों ने

निःस्वार्थ भाव से लोक-हित में अपने अनुभव का अमृत हमें प्रदान किया है। इसलिये इसकी सत्यता और उयादेयता पर सन्देह करना व्यर्थ है।

वर्तमान में हम ऐलोपैथी-सर्जरी को उन्नति के शिखर पर मानते हैं। शरीर में अंगों के प्रत्यारोपण को आश्चर्य से देखते हैं। अनेकों विपम व्याधियों को ठीक होते देखकर हैरान हो जाते हैं। लेकिन इससे भी उन्नत चिकित्सा-विज्ञान पहले भी था। युगों पूर्व दक्ष-प्रजापति के कटे सिर और पूपा के दान्तों को अश्विनी कुमार ने प्रत्यारोपित कर दिखाया था। स्वयं महादेव ने गणेशजी का मस्तक कट जाने पर हाथी का सिर प्रत्यारोपित किया था। यह शल्य-क्रिया (सर्जरी) का सर्वोत्तम सफल उदाहरण है। चन्द्रमा के क्षय (T.B-) और इन्द्र का भुजा-स्तम्भन ठीक किया जाना भी उन्नत शरीर-चिकित्सा-विज्ञान के उदाहरण थे। च्यवन ऋषि को रसायन-चिकित्सा द्वारा पुनर्जीवन प्रदान किया जाना किसी से नहीं छिपा है। च्यवन ऋषि के नाम पर प्रचलित च्यवनप्राश आज प्रत्येक-व्यक्ति बड़े चाव से सेवन करता है जो आयुर्वेद पद्धति का एक विशुद्ध और उत्कृष्टतम टॉनिक है।

वर्तमान में हमारे देश में पाश्चात्य चिकित्सा अत्यधिक पनप रही है। इस पद्धति ने हमारे स्वास्थ्य और हमारे देश को काफी नुकसान पहुंचाया है। इस गरीब देश में ऐसी मंहगी चिकित्सा से रोगियों की निर्धनता और अधिक बढ़ी है जबकि अनेक रोगी पैसे के अभाव से चिकित्सा न करवाने के कारण ही मर जाते हैं। निर्धनों के लिये रोगी हो जाना उनके लिये दुर्दिन का ही आगमन है। कुशल चिकित्सक की सलाह भी मोटी फीस दिये विना नहीं मिल पाती। सर्वप्रथम रोगी के मल-मूत्र रक्त परीक्षण रोग-निदान हेतु आवश्वक समझा जाता है। इसके बिना चिकित्सा प्रारम्भ नहीं हो पाती इससे रोगी को कई बार गंभीर संकट का सामना करना पड़ जाता है। कई बार एक्स-रे करवाना भी आवश्यक समझा जाता है। एक्स-रे रोग-निदान का महत्वपूर्ण उपादान समझा जाता है। रोगी भी एक्स-रे करवाकर बड़ा प्रसन्न होता है। मगर वह नहीं जानता कि यह रोग-निदान के साथ ही रोग-प्रदान का भी महत्वपूर्ण उपादान है। गर्भिणी और छोटे शिशुओं के लिये तो इसका प्रयोग वर्जित

है ही पूरी आयु के व्यक्ति के लिये भी इसका बार-बार प्रयोग अनुचित है। इस प्रकार रोगी अपना समय और धन परीक्षणों में खर्च करने के बाद चिकित्सा-क्रम में आ पाता है तो चिकित्सा काफी मंहगी पड़ती है। लाभ न होने पर या कम होने पर बार-बार चिकित्सा क्रम बदलना पड़ता है। इससे रोगी शारीरिक-दृष्टि से भले ही बाद में, मगर आर्थिक दृष्टि से पहले ही मर जाता है।

औषधि, जो स्वास्थ्य और जीवन के लिये अति आवश्यक है बड़ी मंहगी पड़ती है। विदेशी कम्पनियाँ स्वास्थ्य के नाम पर करोड़ों रुपयों का व्यापार करती हैं। इनकी दृष्टि में आर्थिक लाभ प्रथम और रोगी का स्वास्थ्य द्वितीय स्थान पर रहता है। यद्यपि दवा सस्ती होती है किन्तु उच्च शिक्षा प्राप्त चिकित्सा वैज्ञानिकों द्वारा रिसर्च का खर्च, सुन्दर व आकर्षक पैकिंग और अनेक प्रकार से विज्ञापन का खर्च करने के बाद कम्पनी का अपना मुनाफा बचाकर यदि दवा मंहगी पड़े तो इसमें भला कम्पनी का क्या दोष है। हमारे देश में चिकित्सा पर जितना पैसा हमारी सरकार खर्च कर रही है आंकड़े बताते हैं कि उतना पैसा किसी भी विकाशशील और उन्नत देश में नहीं होता है। पर दुर्भाग्य से हमारे देश के सामान्य जन को इसका लाभ नहीं मिल पा रहा।

अतिआधुनिक औषधियों के जिस आशु-गुण पर हम मुग्ध हैं वह औषधियाँ हमारे स्वास्थ्य-हनन के साथ प्राणों को भी संकट में डाल देती है। ये दवाऐं अधिकांशतः विदेशों में हमारे देश से प्रतिकूल वातावरण में निर्मित की जाती हैं। कृत्रिम और तेज असरदार रूप में इनका निर्माण किया जाता है। पशु-पक्षियों पर इनके परीक्षण किये जाते हैं, जिनका हमारे रक्त से विपरीत गुण होता है। इनकी कडवाहट, अप्रिय-गन्ध और असहिष्णुता को दबाने हेतु केप्शूल या कोटेड रूप में पैकिंग किया जाकर शरीर-भार के अनुपात में रोगी को देना निश्चित किया जाता है। शुरू से अन्त तक की पूरी प्रक्रिया हमारे देश की जलवायु में रह रहे रोगी व रोग के अनुकूल नहीं बैठती।

इन औषधियों का मादक प्रभाव रोग को तो नहीं मिटा पाता मगर इनका संज्ञा-शून्यता का गुण रोगी को रोग न होने या रोग के कम होने

का क्षणिक अहसास अवश्य कराता है जो रोगी के साथ चिकित्सा का कितना बड़ा धोखा है।

अधिकांश दवाओं पर ऐक्सपायरी डेट अर्थात औषधि के एक निश्चित समय पर गुण नष्ट होने की तिथि अंकित रहती है। उस निश्चित तारीख के बाद औषधि सर्वथा गुण-हीन हो जाती है और उस औषधि में घातक गुण पैदा हो जाता है। ऐसी सभी औषधियां जिन्हें रोगी सेवन करता है, सेवन के बाद क्या शरीर में निश्चित समय के बाद अपना गुण स्थिर रख पाती होंगी और क्या समय बाद अपना विपरीत प्रभाव प्रदर्शित नहीं करती होंगी ?

आयुर्वेद की कोई दवा ऐसा दुष्प्रभाव नहीं रखती। आसब, आरिष्ट, रस-धातु और विष से बनी प्रत्येक औषधि पुरानी होने पर अपने गुणों से हीन नहीं हो जाती अपितु गुणों में वृद्धि को प्राप्त होती हैं। अपना प्रभाव और भी अच्छा प्रदार्शित करती हैं। चूर्ण एवं अवलेह जैसी साधारण और काष्ठ वर्ग की दवा भी यदि लाभ न करे तो कम से कम नुकसान तो नहीं करती।

इस चिकित्सा-पद्धति ने नीम-हकीमों व प्राइवेट प्रेक्टिस को जन्म देकर गरीब, अनपढ़ और सीधे व्यक्तियों के प्राण ही संकट में डाल दिये हैं। आये दिन इन द्वारा प्राण-हरण चर्चा हमें समाचार पत्रों में पढ़ने को मिल जाती है।

कभी-कभी कम्पनी के प्रचारित पेटेन्ट फार्मूले से रोगी स्वयं भी अपना नुकसान कर लेता है। इन दवाओं का शीघ्र लाभ अस्थाई होता है जो बार-बार लेने से कई अनामी व्याधियों को उत्पन्न करता है। आधुनिक चिकित्सा में पेनिसिलीन और सल्फा ग्रुप की औषधि तो शरीर में प्रतिक्रिया के लिये विख्यात हैं ही, मगर हमें याद रखना चाहिये कि कोई भी औषधि, किसी भी व्यक्ति को, किसी भी समय अपनी प्रतिक्रिया का शिकार बना सकती हैं।

पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति रोगाणु-निरोधी चिकित्सा है। जिसे एण्टी-बायोटिक कहते हैं। इसमें औषधि के प्रभाव से रोगाणु नष्ट नहीं होते अपितु उनके बढ़ने की गति रुक जाती है और वे मृतप्राय हो जाते हैं। समय

पर रोगी की जीवनीय शक्ति कम होने पर पुनः प्रबल वेग से ये जीवाणु सक्रिय होकर रोग की पुनरावृत्ति कर देते हैं। इस प्रकार बार-बार उच्चतम जीवाणु निरोधी दवा और उच्चतम जीवनीय-शक्ति-वर्धक दवा से रोगी बार-बार स्वस्थ और अस्वस्थ होता रहता है। मानों रोग-वृद्धि कर जीवाणु और जीवाणु-निरोधी दवा जैसे दो पहलवानों के लिये यह शरीर बहुत बढ़िया युद्ध का मैदान हो। कारण यह कि एण्टी-बायोटिक की कम मात्रा जहाँ रोगाणु पर अपना प्रभाव नहीं दिखा पायेगी वहाँ अति मात्रा अथवा निर्माण प्रक्रिया में तकनीकी त्रुटि तुरन्त अपना घातक अथवा मारक प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहेगी। इस तरह मध्यम-स्तर का रोगी बार-बार शारीरिक और आर्थिक रूप से निर्धन बनकर सौभाग्य से मर जाता है अथवा दुर्भाग्य से जी लेता है।

उच्चतम जीवाणु-निरोधी (हाई एन्टी बायाटिक) दवा का उच्च चिकित्सा प्राप्त चिकित्सकों द्वारा जिस खुले रूप से अति दुरुपयोग हो रहा है उसे रोगी समझ नहीं पाता और चिकित्सक समझाना नहीं चाहता एवं अति-उपयोग के विरोध में कहीं कुछ किया भी नहीं जा सकता। इसके दुरुपयोग से रोगाणु स्वयं भी ऐसी स्थिति में आ गये हैं कि उनपर अधिकतम एन्टी बायोटिक का कोई प्रभाव ही नहीं हो पाता। दूसरी ओर इसके अति उपयोग से व्यक्ति की स्वस्थ आन्त्र में मौजूद स्वस्थ जीवाणु रोगाणु रूप से व्यक्ति को चलता-फिरता रोग-संक्रमण कर्त्ता बना डालता है, कैसी विडम्बना है कि राष्ट्रीय-स्तर पर यह सब कुछ हो रहा है और सब मौन दर्शक बने देख रहे हैं।

वर्तमान में अधिकांशतः रोगी और चिकित्सक का सम्बन्ध घटिया स्तर के सौदेबाजी का सम्बन्ध होकर रह गया है। ऐसा होना मानवीय मूल्यों की घोर उपेक्षा और चिकित्सक के चरित्र के सर्वथा प्रतिकूल है। अनेक गरीब केवल पैसे के अभाव से साधारण बिमारी को भी असाध्य बना कर शरीर से चिपटाये कष्ट-प्रद जीवन जीते हुये मृत्यु की घड़िया गिनते रहते हैं।

हम भारतवासियों ने ऐलोपैथी चिकित्सा को ही एकमात्र वैज्ञानिक और सफलतम चिकित्सा-पद्धति मान लिया है। और आयुर्वेद को अवैज्ञा-

निक एवं ग्रामीणी चिकित्सा। इसमें सरकार भी निर्दोष नहीं है। हमारी ही तरह सरकार भी इस पद्धति के प्रति आर्कषित और मोहग्रस्त है देश की ८० प्रतिशत ग्रामीणी जनता का पूरक आयुर्वेद है जिस पर नाममात्र का वजट रखा जाता है। हम भारतीय पहले अंग्रेजियत के प्रति आर्कषित रहे फिर अंग्रेजी के प्रति और अब अंग्रेजी दवा के प्रति भी कम आर्कषित नहीं है।

हमें हमारा दृष्टिकोण इस मान्यता के प्रति बदलना ही होगा। आयुर्वेद के प्रति अविश्वास का कोई कारण नहीं है। अंग्रेजो के जमाने में कलकत्ता में कविराज महामहिम श्री गणनाथ सेन से अनेक अधिकारी वर्ग के अंग्रेज चिकित्सा करवाते थे। वम्बई में श्री पं० शिव शर्मा के पास भी अनेकों विदेशी ऐलोपैथी चिकित्सा से निराश होकर चिकित्सा-प्राप्त करने आते थे। विदेशी भी यह स्वीकार करते हैं कि सुश्रुत अपने युग के श्रेष्ट-शल्य-चिकित्सक (सर्जन) थे उनकी शल्य-क्रिया (सर्जरी) के उपकरण वर्तमान शल्य-उपकरणों से भी उत्तम और संख्या में अधिक थे तथा यह भी कि भारतीय अपने शल्य-उपकरणों से वाल को भी विभक्त कर सकते थे। पाश्चात्य वैज्ञानिक हमारे ग्रंथों में अमृत तलाश कर रहे हैं और हम पश्चिम का विष-पान कर रहे हैं। यह हमारा कितना बड़ा अज्ञान है।

ग्रामीण क्षेत्र में कई व्याधियाँ प्राथमिक स्तर पर ही क्षेत्रीय जड़ी-बूटियों से ठीक हो जाती हैं और बड़े अस्पतालों में जाने की स्थिति ही नहीं आने पाती। कई वार अच्छी और मँहगी चिकित्सा से निराश, मृत्यु की घड़ियाँ गिनता रोगी किसी परिचित या अपरिचित के कथनानुसार किसी साधारण दवा का सेवन कर जीवन प्राप्त कर लेता है। मगर इनका प्रचार न हो पाने से और इसकी वैज्ञानिकता को न समझकर रोगी के भाग्य का संयोग मानकर चुप हो जाते हैं।

आयुर्वेद अपने आप में एक सम्पूर्ण-शास्त्र है। इसकी अपनी निजी मौलिकता है। अपना शतशः प्रायोगिक अनुभूत ज्ञान है। आयुर्वेद यह बताता है कि जो व्यक्ति (प्राणी) जिस देश की जलवायु में पैदा हु ा है उसके लिये उसी देश की औषधि लाभकर होती है। हमारे ऋषियों ने पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु का अपनी दिव्य-दृष्टि और मेहनत द्वारा अति सूक्ष्म पंचभूतात्मक विश्लेषण किया है जो वर्तमान में अति सुसज्जित लेबोरेटरी

में भी संभव नहीं हो सकता। आयुर्वेद विश्व की प्रथम चिकित्सा-पद्धति है। चिकित्सा की सभी पैथियों की यह जन्मदाता है। ऐलोपैथी मात्र १५० वर्ष से प्रकाश में आई है क्या इससे पूर्व कोई चिकित्सा-पद्धति थी ही नहीं? चेचक, क्षय फिरंग, मलेरिया, सेप्टिक, ऐलर्जी जैसी व्याधियों के जीवाणु जो आज स्लाइडों में नजर आते हैं इन सबका रोग-निदान एवं चिकित्सा आयुर्वेद में अपने ढंग से वर्णित है।

आयुर्वेद शास्त्र में प्रत्येक रोग का ज्ञान, उससे बचने का उपाय, रोग होने पर उसकी चिकित्सा विस्तारपूर्वक वर्णित है। देश, काल-पथ के अनुकूल और प्रतिकूल आहार-विहार का वर्णन, प्रात: उठने से लेकर सोने तक और ऋतु के अनुसार खान-पान, रहन-सहन का उचित मार्ग-दर्शन स्वस्थ रहने के उपाय, साध्य और असाध्य रोग के लक्षण बताकर हमें उचित दिशा-ज्ञान दिया है। फिर भी हम नदी के प्रतिकूल धार में बढ़ने जैसा कष्ट उठाकर अपनी ही हानि करें सो अनुचित है। इस प्रकार आयुर्वेद पूर्णरुपेण वैज्ञानिक है। इसमें अवैज्ञानिकता कहीं भी तो नहीं।

हमारे देश की जलवायु हमारे अनुकूल ही नहीं अपने आप में एक उत्तम टानिक है। हम मात्र थोड़ा-सा समझ रखकर ही अनेक व्याधियों से मुक्त रह सकते हैं। हमारे यहाँ की मातायें जो समय-समय पर घर की वस्तुओं से लाभ प्राप्त करती रही हैं। किसी चिकित्सक से कम नहीं हैं। साधारण रोग तो वे ही ठीक कर लेती हैं। नीम और तुलसी जैसे पेड़-पौधे हमारे आँगन की शोभा ही नहीं हमारे स्वास्थ्य के अनमोल रत्न हैं। यहाँ की धूप विटामिन 'ए' और 'डी' ही नहीं प्राणशक्ति को बलवान करती है। ऐसा आयुर्वेद हम भारतीयों का प्राण है और जीवन का स्पन्दन है। आयुर्वेद एक शुद्ध, हानि-रहित, सस्ती और अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धति है। इसकी निर्माण-प्रक्रिया अत्यन्त सरल और स्थाई गुण-प्रद है। यहाँ का अनपढ़ ग्रामीण भी इस आयुर्वेद से प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से परिचित है। (क्रमश:)

तान्त्रिक परामर्श

['सहज आनन्द' के पाठकों को पूर्व सूचना दी गई थी कि इसमें प्रत्येक माह उनकी समस्याओं का समाधान और प्रश्नों के उत्तर श्री गोविन्द शास्त्री दिया करेंगे। आप लोगों का स्नेहपूर्ण आग्रह पूरा करने के लिये इस स्तंभ का प्रारंभ कर रहे हैं और यह दायित्व उसी विश्वसनीय व्यक्ति ने स्वेच्छया ले लिया है।

आप कल्पना कर सकते हैं कि इतने बड़े परिचय क्षेत्र में सभी जन तो यह चाहते हैं कि शास्त्री जी के पत्र मिलते रहें, उनसे निकट सम्पर्क वना रहे पर इसके लिये उनको कितने पत्र मासिक लिखने पड़ेंगे और उसके लिये कितना समय चाहिए। यह भी आप जानते हैं कि उनके पास न कोई संस्था है, न कोई आफिस है, न कोई सहायक एक सामान्य सद्गृहस्थ हैं, व्यय के लायक आय हो जाती है इसके साथ ही वे यह भी समझते या मानते हैं कि उनके हस्ताक्षरों से लोग अधिक प्रसन्न होते हैं। जव इतने पत्र नहीं लिख सकते तो एक संवादहीनता की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके समानान्तर तथ्य यह भी है कि अनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका उत्तर वहुत विस्तृत होता है या वेप्रश्न सार्वजनिक महत्त्व होते हैं—इन सवके समाधान के रूप में सहज आनन्द एक उत्तम माध्यम के वनेगा। इससे संवादहीनता की स्थिति नहीं होगी। आप प्रत्येक अंक में शास्त्री जी का सन्देश और वक्तव्य आपके जीवन की समस्याओं के निराकरण के रूप में पढ़ेंगे।

—सम्पादक]

पितृदोष

यद्यपि इस अंक के लिये कोई विशेष प्रश्न या समस्या पाठकों की तरफ से नहीं है क्योंकि पत्र का प्रकाशन ही अव हो रहा है फिर भी यहाँ हम उस पहलू को ले रहे हैं जो हमारे जीवन में कहीं न कहीं है पर हम उसे पहचान नहीं रहे हैं। गये दिनों ऐसे अनेक प्रसंग देखने में आये ऐसे कई पीड़ित परिवारों से मिलने का अवसर आया जिसे देख कर यह लगा

कि इसी पक्ष पर लिखना समीचीन रहेगा।

हम विश्वास नहीं कर सकते फिर भी यह सच है क्योंकि एक ही स्थान पर नहीं अनेक स्थानों पर इस प्रकार का कोप देखा है, उसका उपचार बताया है और परिणाम देखे हैं तब यह मानना पड़ा है कि सच-मुच में ऐसा भी हो सकता है अन्यथा व्यक्तिगत जीवन में मुझे ऐसी कोई समस्या देखने को नहीं मिली जिससे मैं इस विषय का स्वयं द्रष्टा या भुक्त-भोगी होता फिर भी जिन लोगों को देखा वह भी स्वानुभव से कम नहीं है।

हो यह रहा है कि हम हमारे प्राचीन विश्वासों और व्यवहारों से दूर होते जा रहे हैं। हमारी शिक्षा पद्धति हमारा 'ब्रेन वाश' कर देती है, रहे सहे में हम स्वयं इतने विश्वासहीन किंवा मूर्ख हो जाते हैं कि जब तक किसी चीज को स्वयं नहीं देख लें, मानने के लिये तैय्यार नहीं होते तथा उसके कार्य कारण भाव को समझे बिना हमारा अज्ञान सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

इन परम्पराओं की मीमांसा करने के पीछे मेरा यह आशय किंचित्‌ भी नहीं है कि मैं हमारी पीढ़ी को इन रहस्यों में ढाँप दूँ या उनकी तर्क शीलता को निरर्थक सिद्ध कर दूं या अन्ध विश्वासों को स्थापित करूँ। मेरा इतना भर आग्रह है कि तर्क के समानान्तर विश्वास की प्रतिष्ठा हो, कार्य कारण-सम्बन्ध की जिज्ञासा के समानान्तर श्रद्धा का प्रसार हो। हम जिस किसी भी पद्धति से सुखी और तनावहीन जीवन का आनन्द ले सकें वह हम जानें और व्यवहारें। मैं स्वयं विश्वास और श्रद्धा के चमत्कार देखता रहा हूँ आस्था ने मेरे जीवन को कितना आनन्दमय किया है, मैं ही जानता हूं। अब तो इस के प्रति इतना आश्वस्त हो चुका हूँ कि सारा संसार भी मिल कर मुझे तर्क का चौबट या सूक्ष्मदर्शी दे तो मैं उस संसार से छिन्न नहीं हो सकता।

हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि हम, अकेले नहीं हैं। हम एक सुदीर्घ परम्परा की कड़ी हैं, हमारे पूर्व पुरुषों की एक लम्बी शृंखला है। वे लोग आज पाँच भौतिक देह से नहीं हैं किन्तु उनका कोई न कोई देह अवश्य है और यदि वे सूक्ष्म देहधारी हैं तो उनका अपनी परम्परा से

लगाव भी अवश्य है। वे हमारे जीवन और उसमें घटने वाली घटनाओं के प्रति भी एक सीमा तक संवेदनशील हैं। जहाँ उनका वश चलता है वहाँ वे हमारी सहायता भी करते हैं और जहाँ वे हमारे कार्यों से रुष्ट होते हैं वहाँ वे हमारे जीवन में अप्रिय परिस्थितियाँ भी उत्पन्न करते हैं।

हमारा जीवन दर्शन बदल रहा है, पूर्वजों के प्रति हम उपेक्षित होते जा रहे हैं। उनका पार्वण श्राद्ध तथा घर में होने वाले मांगलिक अवसरों पर उनका तर्पण नहीं करते, परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकार की विषमतायें सामने आने लगती हैं जिनके लिये हम यह समझते हैं कि ये प्राकृत घटनायें हैं क्योंकि इससे आगे हमारा सोच जाता ही नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी घटनायें प्राकृत भी होती हैं पर वे प्राकृत हैं या पितृकृत इसका विश्लेषण करने की योग्यता हमारे में नहीं है।

अभी गत माह की घटना है—जिस विद्यालय में मैं शिक्षण करता हूँ, उसी में कार्यरत एक शिक्षक की पुत्री एक मध्याह्न में बेहोश हो गई। कोई तीन सप्ताह तक वह बेहोशी की ही हालत में रही। डाक्टरों ने उसे खाने की, पेशाव की आदि प्राकृतिक क्रियाओं की नलकियाँ लगा दी। अब तव की स्थिति वन गई। मुझ से भी किसी ने प्रसंग चलाकर पूछा—क्या इसमें किसी ऊपरी वाधा की भी संभावना है? मैंने कहा—ऐसा हो तो सकता है। लड़की के अस्वस्थ होने का तरीका और उसकी अवस्था ऐसी आशंका वताते हैं। अच्छा रहे—किसी योग्य व्यक्ति से परामर्श-सहायता ली जाय।

वाद में जब उसकी कुण्डली देखी तो निश्चय से कह दिया कि ऐसी ही वात है। संयोग कि उन लोगों ने एक ऐसे ही गुणी व्यक्ति से सम्पर्क किया महामाया की मानता मानी और उसके उपचार से लड़की निरन्तर स्वस्थ होती चली गई। मजे की वात यह कि उसका पिता विज्ञान का अध्यापक था। यदि हम सरितावादी विचारधारा से इस विज्ञान को केवल अंधविश्वास और ढकोसला ही कहते रहते तो लड़की शेष हो चुकी थी। कोई भी विधि सम्पूर्ण नहीं है, हो भी नहीं सकती क्योंकि विषय इतना विस्तृत और व्यापक हो जाता है कि उसके विभाग करने ही पड़ते हैं। न्यायपूर्ण और विवेकसंगत वात तो यह है कि दोनों ही स्थूल और सूक्ष्म

अवस्थाओं का सम्यक् विवेचन करने वाले शास्त्रों को पूरे विश्वास के साथ पढ़ा और प्रयोग किया जाय। जहाँ जिस शास्त्र की गति है, वहाँ उसे माना ही जाय। बुद्धि को संकीर्ण न किया जाय, विश्वास को किसी भी शर्त के साथ न बांधा जाय।

अनेक ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे, जहाँ यह शिकायत सुनने को मिले कि क्या करें? घर में कोई न कोई खाट में पड़ा ही रहता है, या आमदनी तो खूब है पर बरकत नहीं होती, पता ही नहीं चलता कि किस रास्ते चली गई। घर में बच्चों के अचानक से कोई अंग विकार हो गया है, बुरे-बुरे स्वप्न आते हैं, घर में अनावश्यक कलह रहता है। इस तरह की और भी विपत्तियाँ हो सकती हैं।

इस तथ्य को फिर दोहरा दूँ कि ये शिकायतें सामान्यतया भी हो सकती हैं, ऋतु और परिवर्तित स्थान के प्रभाव से भी संभव है, व्यक्ति के अपने स्वभाव एवं प्रमाद से भी ऐसा हो सकता है और इन सब कारणों एवं संभावनाओं के समानान्तर पितृदोष भी हो सकता है। हम हमारे वाह्य उपचार तो ऐसी स्थिति में करेंगे ही यदि किसी मर्मज्ञ व्यक्ति ने हमें पितृ दोष बताया है तो उसका उपचार भी कर लेने में कोई आपत्ति नहीं है। स्मरण रहे, व्यक्ति की निरपत्यता अर्थात् सन्तानहीनता के कारणों में पितृशाप भी एक कारण बताया है, ज्योतिष के प्रामाणिक आचार्यों ने। जब व्यक्ति निर्वंश रह सकता है तो क्या अन्य प्रकार के दोष वा अवरोध उत्पन्न नहीं हो सकते?

उपचार—पितृदोष के लिये विशिष्ट उपचार, शास्त्रों में विस्तार से बताये गये हैं, उनको यहाँ लिखना संभव नहीं है, यहाँ हम सामान्य उपचार बता रहे हैं जो कि बिना किसी की सहायता से किये जा सकते हैं।

जहाँ हम हमारे पीने के पानी को रखते हैं उन घड़ों के पास में ही एक साफ सुथरा पत्थर लाकर उसे पितृस्थनिक मान कर रख दिया जाय। नित्य स्नान करके पितरों का स्मरण करके उन पर पानी की तीन अंजलि चढ़ा दी जाँय। ध्यान रहे उस परीण्डे में जूंठ या अन्य अशुद्धता न की जाय।

अथवा घर के ही किसी एकान्त स्थान में छोटा-सा स्थान पितरों का

बना कर वैसे ही पत्थर रख दिये जाँय और अमावास्या, पूर्णिमा को वहाँ प्रसाद चढ़ा दिया जाय, उनके नाम पर भोजन कल्पित करके किसी भूखे को या ब्राह्मण को खिला दिया जाय उस स्थान पर अगरबत्ती रोज जलाई जायँ।

अमावास्या के दिन नान्दी श्राद्ध करा लिया जाय। नान्दी श्राद्ध वैसे तकनीकी काम है पर इसके जानकार लोग मिल जाते हैं इसलिये किसी अच्छे कर्मकण्डी से करा लिया जाय। दो-चार बार करने से अपने आप समझ में आ जायेगा।

काल दोष

अनेक ऐसे प्रसंग या समस्यायें भी सामने आई हैं जिनके मूल में काल-दोष रहा है जैसे हम किसी यात्रा में गये हैं और वहाँ जाने के बाद अस्व-स्थता या किसी अनावश्यक झंझट में फँस गये हैं कोशिश करके भी उससे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं, एक मकान हमने बनवाया और उसके बनने के बाद हमारे हाथ तंग हो गये, या परिवार में वृद्धि नहीं हुई या कोई मांगलिक कार्य नहीं हुआ तो यह भी कालदोष ही है। ऐसी स्थिति में हमें मकान के कार्यारंभ का दिन व समय तथा किस दिशा में शिलान्यास किया गया था, यह देखना चाहिए। यद्यपि मकान के मामले में ग्रहशान्ति, वास्तु-शान्ति के साथ शिलान्यास में भी यत्किंचित् परिवर्तन करके अच्छे ज्योतिषी की राय से कुछ आयोजन कर देना चाहिए। शिलान्यास व गृह प्रवेश के समय जो आयोजन वा हवन पूजन आदि किये जाते हैं, उनके करने का प्रयोजन ही यह रहता है तथा यह सब करने के बाद ऐसी विपरीतताओं की संभावना नगण्य हो जाती है फिर भी ऐसा हो तो उसकी शान्ति के लिये घण्टाकर्ण का या अरिष्टशान्ति के निमित्त अन्य प्रयोग करने चाहिएँ। मकान के सिवा अन्य मामलों में नक्षत्र दोहद का दान करना उचित रहता है। नक्षत्र दोहद इस प्रकार माना गया है—अश्विनी-कल्माष, भरणी-तिल, चावल, कृतिका-उडद, रोहिणी-गाय का दही, मृगशिरा-गाय का घी, आर्द्रा-दूध, पुनर्वसु-हरिण का मांस, पुष्य-मृग रक्त, आश्लेषा-खीर, मघा-नीलकण्ठ का मांस, पू० फाल्गुनी-मृग मांस, उत्तरा

फाल्गुनी-खरगोश का मांस, हस्त-साठी चावल, चित्रा-प्रियंगु, स्वाति-पूआ, विशाखा-विविधपक्षी, अनुराधा-अच्छा ऋतुफल, ज्येष्ठा-कछुये का मांस, मूल-मैना का मांस, पू० षाटा-गोह का मांस, उत्तराषाढा-शल्व का मांस, श्रवण-कसार, धनिष्ठा-मूंग के लड्डू, शतभिषा-जौ की लप्सी, पू० भाद्रपद-मछली और अन्न, उ० भाद्रपद-विविध अन्न, रेवती-दही और चावल।

यद्यपि यह दोहद हैं, अर्थात् किसी विशेष परिस्थिति में इन नक्षत्रों के अशुभ फलप्रद होते हुए भी कोई काम करना पड़े तो ये खाई जा सकती हैं या दान करके काम किया जा सकता है किन्तु अशुभ समय में भूल से काम कर देने के बाद इनका दान कर देने से भी शमन हो जाता है यदि यह संभव न हो तो इनके क्रमशः दानयोग्य पदार्थ ये हैं—भोजन, भोजन, सोना, घी, तिल, गाय, पीतल, तेल, बकरी, वस्त्र और घी, भोजन, अन्न, तिल, दूध, गौ का घी, तिल, चान्दी की खड़ाऊ, गौ, या मोती, भोजन, नारियल, घोड़ा, भोजन, भोजन, अन्न, बैल। यदि इनमें से किसी वस्तु के देने क्षमता न हो तो उसके निमित्त यथाशक्ति धन कल्पित करके दान करना उचित है।

(क्रमशः)

(पृष्ठ ४३ का शेष)

काली है तो सरस्वती भी है और लक्ष्मी भी है। एक ही रूप में अन्य रूप एकाकार हो जाया करते हैं।

दीपाली के रूप में मैं स्नेह की, माँ के वत्सल स्वरूप की अर्चना करता हूँ। तुम्हारे ये सम्बोधन मुझे नहीं रुचते। स्नेह को सफल रूप में पाने के लिये मैं दस स्त्रियों का समूह नहीं जुटा सकता। मैं दीपाली को ही इतनी महिमा मण्डित मानता हूँ कि तुम्हारे सारे समाजिक आग्रह उस एक में ही सिमट आते हैं। वह मेरे लिये माँ की तरह वन्दनीय और पुत्री की तरह रक्षणीय है पत्नी की भांति वह मेरे सुख का और बहिन की तरह रक्त की समान प्रकृति का मूर्त प्रतीक है। उसे मैं किसी तरह के सम्बोधन से विभाजित करना नहीं चाहता। उसके मेरे बीच कुछ भी अप्राकृत या अनैतिक नहीं है। तुम्हारे सामाजिक आग्रहों से परे प्रकृति की नियमावली है उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।'

इतना कहकर गुरु चुप हो गये। जयशंकर बहुत असमंजस की स्थिति में पड़े रहे ☐

क्या ज्योतिष झूठ है ?

● प्रो० पी० पी० वर्मा

आज का युग इतना अधिक जटिल, व्यस्त और वेगवान हो गया है कि साधारण मनुष्य उसके साथ कदम के साथ कदम मिला कर चलने में अपने आपको असमर्थ सा अनुभव करने लगा है। आज के विश्व की समस्याएँ इतनी उलझी हुई हैं कि साधारण बुद्धि एवं शक्ति से सुलझती दिखाई नहीं देतीं। आज संसार के बुद्धिवादी लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि मानव को सुखी बनाने के लिये कुछ नए आयाम और साधन खोजने होंगे। वे साधन क्या हो सकते हैं ? विज्ञान के अति आधुनिक आविष्कार अथवा प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा आजमाये हुए साधन जिनमें मुख्य हैं—ज्योतिष, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र और अतीन्द्रीय ज्ञान।

विज्ञान ने निःस्सन्देह हमारे जीवन को सुखी वनाया है, किन्तु उसका reaction वहुत बुरा हुआ है कि मनुष्य के मन में भविष्य के लिये एक आतंक समा गया है। आज जहाँ कम्प्यूटर और रोबर्ट हमारे आज्ञाकारी बनकर हमारी सेवा कर रहे हैं वहीं परमाणु वम और रोगाणु बम से मानवत त्रस्त है !

इसके विपरीत हमारा परम्परागत करोड़ों वर्षों से आजमाया हुआ रास्ता है—ज्योतिष।

ज्योतिष का आधार नक्षत्रों व ग्रहों की गति एवं उनका पारस्परिक आकर्षण विकर्षण है। एक ग्रह का दूसरे ग्रह के सम्पर्क में आने पर पृथ्वी व उसके वासियों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है इसका अनुमान ज्योतिषी शुद्ध गणित व ग्रहों की गति से लगाते हैं, अतः यह बात निश्चित है कि ज्योतिष कोई शब्द जाल नहीं, अपितु वास्तविक सत्य है इस पर आधारित भविष्यवाणियाँ कोरी गप्प नहीं, वास्तविक ठोस यथार्थ पर आधारित हैं।

लोगों का इस बारे में विवाद है और परस्पर विपरीत विचार है कि ज्योतिष विद्या सही है या नहीं, और यह विपरीत विचार इस लिये बने

कि उन्होंने जिन ज्योतिष्यों को अपनी जन्म पत्रिका या हस्तरेखाएँ दिखाईं और भविष्यफल प्राप्त किया वह आगे समय पर पूरा नहीं उतरा।

इसके मुख्यत: तीन कारण हो सकते हैं :—

सही भविष्यकथन के लिए यह सबसे पहली आवश्यकता है कि ज्योतिषी ज्योतिष के क्षेत्र में निष्णात हो उसकी इस विद्या में गहरी पैठ हो, और सबसे बड़ी बात यह है कि उसे व्यावहारिक (Practical) ज्ञान हो। अनेक वर्षों की कठिन पढ़ाई तथा हजारों रुपये व्यय करने पर एक व्यक्ति डाक्टर बनता है और इंजैक्शन लगाने की योग्यता प्राप्त करता है। इसी प्रकार हजारों रुपये व्यय कर अनेक वर्षों की कठिन साधना के बाद ही एक व्यक्ति साधारण इंजीनियर बनता है। पर आश्चर्य तो तब होता है जब मात्र राशियों और ग्रहों के नाम याद कर तथा तिलक-छापे लगा कर एक व्यक्ति ज्योतिषी बन बैठता है। जिसके पीछे अनुभव एक या दो महीने का ही होता है। ऐसा व्यक्ति किस प्रकार से सही भविष्य कथन कर सकता है। यह विचारणीय तथ्य है। गलती इन तथाकथित ज्यो-तिषियों की है। वही गलती उन व्यक्तियों की भी है। जो इन अधकचरे ज्योतिषीयों को अपने हाथ या जन्म पत्र दिखाते हैं। तथा भविष्यफल प्राप्त करते हैं। इनसे जो भविष्यफल लिया जाएगा वो सही कैसे होगा ? फिर ज्यतिष पर आक्षेप करना कहाँ तक न्याय संगत है। गलती ज्योतिष की नहीं इन ज्योतिषियों की है। जब तक किसी भी विद्या में गहरी पैठ एवं व्यवहारिक अनुभव नहीं होगा। उसके परिणाम सही हो ही नहीं सकते।

दूसरा कारण है, गलत जन्म समय पर बनी जन्म-पत्रिका का। जन्म-पत्रिका का मूल आधार ही शुद्ध जन्म समय है। जब तक हमारे पास शुद्ध जन्म समय नहीं होगा, तब तक उस पर निर्मित सारी गणित अव्य-वस्थित, त्रुटि पूर्ण एवं भ्रामक होगी। अत: गलत जन्म-पत्रिका या गलत जन्म समय से भीं भविष्यफल गलत हो जाते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी योग्य या जानकार ज्योतिर्विद से 'गर्भशोधन' पद्धति से जन्म समय को सही करा लें। ध्यान रहे, गर्भशोधन पद्धति का ज्ञान भारत में कुछ इने-गिने ज्योतिषियों को ही है। या किसी योग्य

हस्तरेखाविद् से हाथ की रेखाओं के माध्यम से जन्म समय सही एवं त्रुटि हीन बनालें।

तीसरा कारण है : उतावली में किया गया भविष्य कथन। लोगों को मनवृति होती है कि वे दैवज्ञ के हाथ में जन्म-पत्रिका तो बाद में देते हैं और भविष्य कथन पहले पूछ लेते हैं। इतनी उतावली तथा शीघ्रता में सही भविष्य कथन सम्भव नहीं। एक जन्मकुण्डली का अध्ययन करने में कम से कम पन्द्रह-बीस मिनट तो लगते ही हैं। इससे शीघ्र अध्ययन हो ही नहीं पाता। यही स्थिति हाथ के अध्ययन में है।

इसके अतिरिक्त अस्पष्ट हाथ का चित्र, अंधेरे में, धुंधले में, या कम रोशनी में हाथ देखना, दैवज्ञ की मन:स्थिति अनुकूल न होना, चिन्ता ग्रस्त होना आदि भी कई कारण ऐसे हैं। जिससे अच्छे ज्योतिर्षविदों से गलत भविष्य कथन हो जाता है। अत: सही भविष्य कथन चाहने वालों को ऊपर लिखी बातों पर सावधानी से विचार कर उपयुक्त समय पर ही सही दैवज्ञ से भविष्य कथन प्राप्त करना चाहिए।

ज्योतिष पढ़ना और भविष्य कथन प्राप्त करना मेरी हाबी है। देश-विदेश के काफी ज्योतिर्विदों से मैं मिला हूँ। अधिकांशत: अल्पज्ञ एवं झूठी चमक-दमक वाले ही मिले हैं। पर यह कहने में भी मुझे कोई संकोच नहीं है कि कुछ ऐसे कालजयी दैवज्ञ रत्न भी है। जिन्हें कई बार अजमाया है। और हर बार वे कसौटी पर सही उतरे। उनसे जब भी भविष्यफल प्राप्त किया, समय पड़ने पर वह पूर्णत: सही प्रमाणिक एवं अचूक निकला।

अपने अनुभव, मैं आगामी अंकों में लिखूंगा और इसके साथ-साथ 'सहज आनन्द' के माध्यम से ऐसे कपोलकल्पित ज्योतिषियों की पोल भी खोली जायेगी जिन्होंने ज्योतिष को दुकानदारी बना रखा है और इस पवित्र विद्या का धन्धा कर मजबूर लोगों की जेबें काटते हैं और अपनी तिजोरियां भरते हैं□

सहज आनन्द परिवार के विशिष्ट सहयोगी

१. श्री भुल्लन जी तिवारी
एम. आई. जी. कालोनी,
लक्ष्मीनगर
नागपुर, (महाराष्ट्र)

२. श्री महेश वंसल
स्वदेशी वस्त्रालय,
अशोक राजपथ, पटना
(विहार)

३. श्री वनवारी लाल दीक्षित
इण्टरनेशनल ट्रेडिंग कारपोरेशन
कालकादेवी रोड, वम्वई-२

४. श्री ज्ञानचन्द ओसवाल
संतोष निलय
दानवगेरे (कर्नाटक)

५. श्री प्रेम दीक्षित
सैन्ट्रल वैंक, नयागंज
कानपुर (उ० प्र०)

६. श्री तेज प्रकाश त्रिवेदी
महानगर एक्सटेंशन
लखनऊ (उ० प्र०)

७. श्री चन्द्रकुमार
देवीरोड, मैनपुरी (उ० प्र०)

८. श्री जगदीश शंकर पांडे
सिविल लाइन्स, हरदोई
(उ० प्र०)

९. श्री देवेन्द्र शर्मा
कृष्णा टाकीज रोड, ईरोड़

१०. श्री विनोद कुमार सिंघल
दरभंगा कालोनी, इलाहावाद
(उ० प्र०)

११. श्री नरेन्द्र सिकरवार
रूढ़ियाई (म० प्र०)

१२. श्री सुमेर सिंह
श्री विजय नगर (राजस्थान)

१३. सतीश सत्यार्थी
जमालपुर (मुंगेर) विहार

१४. श्री सुरेश सुर्वे
रामेश्वर रोड, खंडवा (म०प्र०)

१५. श्री रामस्वरूप यादव
महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

तांत्रिक, आयुर्वेद और ज्योतिषीय परामर्श के लिये

- इस स्तम्भ में खाली जन्म चक्र को भरकर भेजिये।
- केवल एक प्रश्न का ही उत्तर दिया जा सकेगा।
- उत्तर के लिये पता लिखा पर्याप्त डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना आवश्यक है।
- एक ही प्रकार के कई प्रश्न आने पर उनका उत्तर प्रसंगानुसार आगे के अंकों में प्रकाशित किया जायेगा।
- व्यक्तिगत प्रश्नों के उत्तर व्यक्तिगत स्तर पर भेजे जायेंगे।

........................यहाँ से काटिए........................
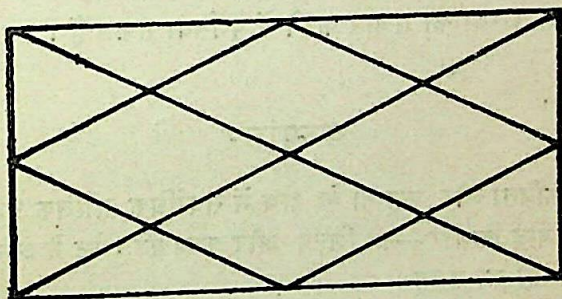
नाम..

जन्मतिथि (अंगरेजी तारीख में)............महीना.........सन्.........

जन्म स्थान..........................जन्म समय..................

कुंडली में दी गयी विशोत्तरी दशा..................................

पता..

आपका एक प्रश्न..

....

....

........................यहाँ से काटिए........................

इस पते को ही काटकर लिफाफे पर चिपकायें

संपादक—सहज आनन्द, (परामर्श-प्रविष्टि १)

सुमति साहित्य सदन

१४४, कूचा पाती राम, बाजार सीताराम, दिल्ली-३

शीघ्र प्रकाश्य

सुमति साहित्य सदन की गौरवशाली परम्परा में

तीन अनूठे रत्न

विश्व साहित्य की झाँकिया

अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान डॉ० जगदीश चन्द्र जैन ने अपने इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ में देश-विदेश के उच्च कोटि के कलाकारों के साहित्यिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। जो पाठकों में जीवन के प्रति आस्था का संचार करने में पूर्णतया सफल हैं।

कल्पांतर

कविता और कहानी के क्षेत्र में सर्वाधिक मौलिक प्रतिभा —राजेन्द्र किशोर—की शिल्प और कथ्य की दृष्टि से अन्यतम कहानियों का संग्रह।

प्रेमचन्द : अपने उपन्यासों में

महान साहित्यकार : प्रेमचन्द के जीवन की विभिन्न घटनाओं, विचारों और उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की छाप उनकी कृतियों में है—इस पर शोध कार्य किया है दैनिक हिन्दुस्तान के श्री सतीश वशिष्ठ ने। प्रेमचन्द साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी शोधग्रंथ।